मास्टर साहब

मास्टर साहब

(मूल बाग्ला से अनूदित)

लेखक
रवीन्द्रनाथ ठाकुर

प्रभात प्रकाशन, दिल्ली-६

प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन, चावड़ी बाजार, दिल्ली-११०००६
अनुवादक : राजेश दीक्षित

संस्करण : १९८०
मूल्य : दस रुपये

MASTER SAHAB *by* Ravindra Nath Tagore Rs. 10.00

कथा-सूची

मास्टर साहब

भूमिका

उस समय रात के दो बज रहे थे। कलकत्ते के निस्तब्ध शब्द-समुद्र मे कुछ लहरें उठाती हुई एक बड़ी बग्घी, भवानीपुर की ओर से आकर, बर्जितला के मोड़ के पास रुकी। उस जगह एक किराये पर चलने वाली घोड़ा-गाडी को देखकर, आरोही बाबू ने उसे पुकार कर बुला लिया। उनकी बगल में एक कोट-हैट पहने हुए बंगाली विलायत-पलट युवा, सामने की गद्दी पर दोनो पाँव फैलाये हुए, कुछ मदमत्त अवस्था मे, गर्दन झुकाये हुए सो रहा था। यह युवक विलायत से नया ही आया था। इसी के स्वागत के उपलक्ष में मित्र के घर एक दावत हुई थी। उस जगह से लौटते समय मार्ग में, एक मित्र ने उसे कुछ दूर तक छोड आने के लिए अपनी गाड़ी में बैठा लिया था। उन्होंने इसे दो-तीन बार ठेल कर जगाते हुए कहा—'मजूमदार, गाडी मिल गयी है। घर जाओ।'

मजूमदार चौंककर, एक विलायती दिव्य गाली देकर, किराये की गाड़ी में जा बैठा। उसके गाड़ीवान को अच्छी तरह से पता बताकर बग्घी के आरोही अपने गम्य मार्ग पर चले गये।

किराये की गाड़ी ने कुछ दूर सीधे जाकर, पार्क-स्ट्रीट के सामने मैदान की सड़क पर मोड लिया। मजूमदार ने एक और अँग्रेजी शपथ का उच्चारण कर, अपने मन मे कहा—'यह क्या ? यह तो मेरा रास्ता नही है !' उसके बाद निद्रा-जड़ अवस्था मे सोचा—'हो भी सकता है, यही शायद सीधा रास्ता हो।'

मैदान में प्रवेश करते ही मजूमदार का शरीर न जाने कैसा हो उठा। अचानक उसे लगा—किसी आदमी के न होने पर भी उनकी बगल की जगह जैसे भीतर जा रही है; जैसे उसके आसन के शून्य अश का आकाश, ठोस होकर उसे दवाता चला जा रहा है। मजूमदार ने सोचा—'यह क्या मामला है ? गाड़ीवान ने मेरे साथ यह किस तरह का व्यवहार शुरू कर दिया ?'

'ओ गाडीवान, गाड़ीवान !'

गाडीवान ने कोई जवाब नही दिया। पीछे की झिलमिली खोलकर उसने साईस का हाथ पकड लिया; कहा—'तुम भीतर आकर बैठो।'

साईस ने भीत कण्ठ से कहा—'नही सा'ब, भीतर नही जाएगा।'

सुनकर मजूमदार के शरीर के रोएँ खडे हो गये। जोर से साईस का हाथ दबाकर कहा—'जल्दी भीतर आओ।'

साईस ने बलपूर्वक हाथ छुड़ाकर, झुककर गाड़ी दौड़ा दी। मजूमदार बगल की ओर भयभीत होकर देखने लगा; कुछ भी नही देख पाया, फिर भी उसे लगा, बगल में एक अटल पदार्थ एकदम जमकर बैठा हुआ है। किसी तरह गले में आवाज लाकर मजूमदार ने कहा—'गाड़ीवान, गाडी रोको।' लगा, गाड़ीवान ने जैसे खड़े होकर, दोनो हाथों से लगाम खींचकर घोडों को रोकने की चेष्टा की, मगर घोडे किसी तरह भी नहीं रुके। दौड़ते हुए दोनों घोडे रेड रोड का रास्ता पकड कर, दुबारा दक्खिन की ओर मुड़ गये। मजूमदार ने त्रस्त होकर कहा—'अरे कहाँ जाता है ?' मगर कोई उत्तर नही मिला। बगल की शून्यता की ओर रह-रहकर कटाक्ष करते-करते मजूमदार के शरीर से पसीना छूटने लगा। किसी तरह सिकुड़ कर अपने शरीर को जहाँ तक संकुचित कर सकता था, वह उसने कर लिया; परन्तु उसने जितनी जगह छोड़ दी थी, वह सब जगह भर गयी। मजूमदार मन-ही-मन सोचने लगा कि किसी प्राचीन यूरोपीय ज्ञानी ने कहा है—'Nature adhores vecuum' वही तो देख रहा हूँ। परन्तु यह क्या है रे ! यह क्या नेचर है ? यदि मुझ से कुछ न कहे, तो मैं इसी समय सब कुछ छोड़कर कूद

पड़ूँगा।' मगर कूदने का साहस नहीं हुआ—कहीं पीछे की ओर से अभावित-पूर्व कोई घटना न घट जाए। पहरे वाले को पुकारने के चेष्टा की—परन्तु बड़े कष्ट से ऐसी एक अद्‌भुत क्षीण आवाज निकली कि अत्यन्त भय के बीच भी उसे हँसी आ गयी। अँधेरे में मैदान के वृक्ष, भूतों की निस्तब्ध पार्लियामेंट की भाँति परस्पर आमने-सामने मुँह किये खड़े थे। एवं गैस की बत्तियाँ, जैसे सब कुछ जानते हुए भी कुछ बताएँगी नहीं, इस भाव से खड़ी टिमटिमाती हुई, आलोक-शिखा से आँखों को दबाने लगी। मजूमदार ने सोचा, झटपट एक उछाल में सामने के आसन पर जा बैठूँगा। जैसे ही सोचा, उसी समय अनुभव किया कि सामने के आसन पर से केवल एक चितवन, उसके मुँह की ओर ताक रही है। आँखें नहीं है, कुछ भी नहीं है, फिर भी एक चितवन है। वह चितवन किसकी है, यह जैसे याद आ रहा था, फिर भी किसी तरह भी जैसे विश्वास नहीं हो पा रहा था। मजूमदार ने दोनों आँखों को जबर्दस्ती मूँद लेने का प्रयत्न किया—परन्तु भय की वजह से बन्द नहीं कर सका—उस अनिर्देश्य चितवन की ओर दोनों आँखें इस तरह सख्ती से मिली रहीं कि पलक गिराने का समय भी नहीं मिला।

इस ओर गाड़ी मैदान की गोलाकार सड़क पर केवल उत्तर से दक्षिण और दक्षिण से उत्तर की ओर घूमने लगी। दोनों घोड़े क्रमशः जैसे उन्मत्त हो उठे, उनका वेग बढ़ता चला गया, गाड़ी की झिलमिली थर-थर काँपती हुई झर-झर शब्द करने लगी।

इसी समय गाड़ी, जैसे ठोकर खाकर, अचानक ठहर गयी। मजूमदार ने चकित होकर देखा, उसी की सड़क पर गाड़ी खड़ी हुई है और गाड़ीवान उसे हिलाता हुआ पूछ रहा है—'साहब, कहाँ जाना होगा, बताइए?'

मजूमदार ने नाराज होकर पूछा—'अब तक मुझे मैदान में क्यों घुमाया था?'

गाड़ीवान ने चकित होकर कहा—'कहाँ, मैदान मे तो घुमाया ही नहीं।'

मजूमदार ने अविश्वास से कहा—'तो यह क्या केवल स्वप्न था?'

गाड़ीवान ने कुछ सोचकर डरते हुए कहा—'बाबू साहब, यह शायद केवल स्वप्न नहीं है। मेरी इस गाड़ी में ही, आज तीन वर्ष हुए, एक घटना घटी थी।'

मजूमदार उस समय नशे और नींद का असर सम्पूर्ण रूप से हट जाने के

कारण गाड़ीवान की कहानी पर कान न देकर, भाड़ा चुका कर चला गया।

परन्तु रात में उसे अच्छी तरह नींद नहीं आयी—केवल यही सोचता रहा वह चितवन किसकी थी?

१

अधर मजूमदार के पिता साधारण सरकारी नौकरी से आरम्भ करके एक बड़े ओहदे तक जा पहुँचे थे। अधर बाबू अपने पिता के उपार्जित नकद रुपयों को ब्याज पर उठा देते थे, उन्हें स्वयं कोई मेहनत नहीं करनी पड़ती थी। वे माथे पर सफेद फेंटा बांधकर, पालकी में बैठकर ऑफिस में जाते थे। इधर उनका काम-धाम, ध्यान-ध्यान भी यथेष्ट था। विपत्ति-आपत्ति में, अभाव-अड़चन में, सभी स्तरों के लोग उन्हें ही आकर पकड़ते हैं, इसी को वे गर्व का विषय समझते थे।

अधर बाबू ने बड़ा मकान और दो घोड़ों की बग्घी बनवायी थी, परन्तु लोगों के साथ उनका कोई सम्बन्ध नहीं था, केवल रुपया उधार दिलवाने वाले दलाल आकर अपने लिए नियत हुक्के में तम्बाकू पी जाते थे एवं एटॉर्नी ऑफिस के बाबुओं के साथ, स्टाम्पयुक्त दस्तावेजों की शर्तों के सम्बन्ध में चर्चा होती रहती थी। उनकी गृहस्थी में, खर्च के सम्बन्ध में ऐसी खींचतान रहती थी कि मुहल्ले के फुटबॉल-क्लब के जिद्दी लड़के भी, बड़ी चेष्टा करने पर भी उनकी रोकड़ में दाँत नहीं गड़ा पाते थे।

इसी समय उनकी घर-गृहस्थी में एक अतिथि का आगमन हुआ। लड़का नहीं हुआ, नहीं हुआ—करते-करते, वर्षों बाद उनके यहाँ एक लड़के ने जन्म लिया। लड़के का चेहरा अपनी माँ जैसा था। बड़ी-बड़ी आँखें, नुकीली नाक, रंग रजनीगन्धा की पखुड़ी जैसा—जो देखता वही कहता—अहा, लड़का तो जैसे स्वामी कार्तिकेय जैसा है। अधर बाबू के अनुगत अनुचर रतिकान्त ने कहा—'बड़े घर का लड़का जैसा होना चाहिए, वैसा ही हुआ है।'

लड़के का नाम रखा गया वेणुगोपाल। इससे पूर्व अधर बाबू की पत्नी ननी-बाला, गृहस्थी के खर्च को लेकर, पति के विरुद्ध हुए अपने मन को, उस तरह

जोर देकर किसी दिन भी नही मिला सकी थी। दो-एक शौक की वस्तुएँ अथवा लौकिकता के अत्यावश्यक आयोजन को लेकर, बीच-बीच मे चख-चख अवश्य हो गयी थी, परन्तु अन्त मे पति की कृपणता के प्रति अवज्ञा प्रकट करके उसने चप-चाप हार मान ली थी।

इस बार ननीबाला को अधर बाबू कसकर नही रख सके, वेणुगोपाल के सम्बन्ध में उनका हिसाब, एक-एक पाँव करके हटने लगा। उसके पाँवों की झाँझन, गले का हार, माथे की टोपी, उसकी देशी-विलायती अनेक प्रकार की अनेक रगों की साज-सज्जा के बारे में ननीबाला ने जो कुछ माँगें उठायी, उन सबको उन्होंने कभी नीरव अश्रुपात से, कभी सरल वाक्य वर्णन से जीतकर प्राप्त ही कर लिया। वेणुगोपाल के लिए आवश्यक और अनावश्यक सभी कुछ चाहिए 'ही चाहिए—उस जगह रोकड़ खाली होने का उज्र, अथवा भविष्य में करने का झूठा आश्वासन एक दिन भी नही चल सका।

२

वेणुगोपाल बड़ा होने लगा। वेणु के लिए खर्च करने का अधरलाल को अभ्यास हो गया। उसके लिए अधिक वेतन देकर, बहुत परीक्षाएँ पास किये हुए बूढ़े मास्टर को रखा गया। इस मास्टर ने वेणु को मीठी बोली और शिष्टाचार से वश मे करने के अनेक प्रयत्न किये—परन्तु वे चूँकि बराबर छात्रों पर कड़ा शासन रखते हुए, आज तक मास्टरो की मर्यादा को अक्षुण्ण रखते चले आये थे, इसलिए उनकी भाषा की मिठास और आचार की शिष्टता केवल बेसुरी ही लगी—उस शुष्क-साधना से लड़का भुलावे मे नही आया।

ननीबाला ने अधरलाल से कहा—'यह तुम्हारा कैसा मास्टर है? उसे देखते ही लड़का अस्थिर हो उठता है। उसे हटा दो।'

बूढ़ा मास्टर विदा हुआ। पुराने जमाने मे स्त्रियाँ जिस प्रकार स्वयंवरा होती थी, उसी तरह ननीबाला का लड़का स्वयं मास्टर होने को बैठ गया—वह जिसे चाहे वरण कर ले—सब परीक्षाएँ पास होने पर भी, उसके सामने सभी सार्टीफिकेट व्यर्थ हैं।

इसी समय, शरीर पर एक मैली चादर और पाँवों मे फटे हुए कैन्वस के

जूते पहन कर, मास्टरी की उम्मीदवारी में हरलाल आ पहुँचा। उसकी विधवा माँ ने दूसरे के घर रसोई करके और धान कूटकर, उसे मुफस्सल के एन्ट्रेंस स्कूल से किसी तरह ऐन्ट्रेन्स पास करा दी थी। अब हरलाल कलकत्ते में कॉलेज में पढ़ेगा—ऐसी प्राणपण से प्रतिज्ञा करके वह बाहर निकला था। अनाहार से उसके मुँह का निचला हिस्सा सूखकर भारतवर्ष के 'कन्याकुमारी' अन्तरीप की भाँति पतला हो आया था, केवल विशाल मस्तक हिमालय की भाँति प्रशस्त होकर दूर से दिखलाई पडता था। मरुभूमि की बालू मे सूर्य का प्रकाश जैसे बिखर पडता है, वैसे ही उसकी दोनों आँखो से दीनता की एक अस्वाभाविक दीप्ति निकल रही थी।

दरबान ने जिज्ञासा की—'तुम क्या चाहते हो? किसको चाहते हो?' हरलाल ने डरते-डरते कहा—'मकान के मालिक से भेंट करना चाहता हूँ।' दरबान ने कहा—'भेंट नही होगी।' इसके उत्तर मे हरलाल क्या कहे, वह न साच पाकर इतस्ततः कर रहा था, इसी समय सात वर्ष का बालक वेणुगोपाल, बगीचे से खेल समाप्त कर ड्योढ़ी पर आ उपस्थित हुआ। दरबान ने हरलाल को द्विधा करते देखकर फिर कहा—'जाओ बाबू, जाओ।'

वेणु को अचानक जिद चढ़ी, उसने कहा—'वह नही जाएगा।'—कहकर और हरलाल का हाथ पकड़कर, उसने उसे दूसरी मंजिल के बरामदे में, अपने पिता के पास ले जाकर हाजिर कर दिया।

अधर बाबू उस समय दिवा-निद्रा समाप्त कर, जड़-अलसभाव से बरामदे में बेंत की आराम कुर्सी पर चुपचाप बैठे हुए पाँव हिला रहे थे, और वृद्ध रतिकान्त एक लकडी की चौकी पर बैठा हुआ धीरे-धीरे तम्बाकू पी रहा था। उस दिन इसी समय इसी अवस्था मे दैवसयोग से, हरलाल की मास्टरी खड़े-खड़े बहाल हो गयी।

रतिकान्त ने जिज्ञासा की—'आप कहाँ तक पढ़े है?'

हरलाल ने मुंह कुछ नीचे करके कहा—'ऐन्ट्रेन्स पास की है।'

रतिकान्त ने भौहे उठाकर कहा—'केवल एन्ट्रेन्स पास? मै कहता हूँ कॉलेज में पढे है? आपकी आयु भी तो कोई कम नही दीखती।'

हरलाल चुप रह गया। आश्रित और आश्रय-प्रत्याशियों को सब तरह से पीड़ित करना ही रतिकान्त का प्रधान आनन्द था।

रतिकान्त ने आदर सहित वेणु को अपनी गोद में खींच लेने की चेष्टा करते हुए हरलाल से कहा—'कितने एम० ए०, बी० ए० आये और गये, किसी को भी पसन्द नही किया—और अन्त में क्या राजबाबू ऐन्ट्रेन्स-पास मास्टर से पढ़ेंगे !'

वेणु ने रतिकान्त के दुलार के आकर्षण को जोर से हटाते हुए कहा—'जाओ !' रतिकान्त को वेणु किसी तरह भी सहन नहीं कर पाता था, परन्तु रति भी वेणु की इस असहिष्णुता को उसके बाल-माधुर्य का एक लक्षण कहकर, उससे खूब लाड़-प्यार करने की चेष्टा करता, एवं उसे सोनाबाबू, चांदबाबू आदि कहकर, चिढ़ाकर नाराज कर देता था।

हरलाल की उम्मेदवारी का सफल होना सख्त हो उठा था। वह मन-ही-मन सोच रहा था, कि इस बार किसी सुयोग से, चौकी से उठकर बाहर पहुँच जाने पर ही बचा जा सकता है। इसी समय अधरलाल को सहसा याद आया कि यह छोकड़ा मास्टर नितान्त सामान्य वेतन देने पर ही मिल सकता है। अन्त में स्थिर हुआ कि हरलाल उनके मकान में ही रहेगा, खाएगा और पाँच रुपये वेतन पाएगा। मकान में रखकर जो अतिरिक्त दाक्षिण्य प्रकट किया जाएगा, उसके बदले में कुछ अतिरिक्त कार्य कर देने पर, यह दया सार्थक हो जाएगी।

३

इस बार मास्टर टिक गया। आरम्भ से ही हरलाल के साथ वेणु का सम्बन्ध ऐसा जम गया, जैसे वे दोनो भाई हों। कलकत्ते में हरलाल का आत्मीय मित्र कोई नहीं था—यह सुनकर छोटा वह बच्चा ही उसके सम्पूर्ण हृदय को शीतल करने लगा। अभागे हरलाल को, इस तरह से किसी मनुष्य को स्नेह करने का सुयोग, इससे पहले कभी नहीं मिला था। क्या करने से अपनी हालत अच्छी होगी इसी आशा से बड़े कष्ट से पुस्तकें इकट्ठी करके केवल मात्र अपने ही प्रयत्न से दिन-रात केवल पढ़ता आया था। माँ को पराधीन रहना पडता था, इसी कारण लड़के की शिशु वयस केवल संकोच मे ही कट गयी थी—निषेध की सीमा से पार होकर दुष्टता द्वारा अपने बाल्य-प्रताप को जयशाली बनाने का सुख उसने किसी दिन नही पाया, वह किसी के दल में नही था। वह अपनी फटी हुई पुस्तक एव टूटी हुई स्लेट के बीच अकेला ही था। संसार में जन्म लेते ही जिस लड़के

को निस्तब्ध भला आदमी बन जाना पडता है, उसी समय से माता के दु.ख और स्वय की अवस्था को जिसे सावधानी से समझकर चलना पड़ता है, पूर्णरूप मे अविवेचक होने की स्वाधीनता जिसके भाग्य मे किसी दिन नही जुटती, आमोद सहित चचलता करना अथवा दुःख पाकर रोना, यह दोनों ही जिसके लिए लोगो की असुविधा है और नाराजगी के भय से सम्पूर्ण शिशु शक्ति का प्रयोग करके दबाये रखना पड़ता है, उस जैसा करुणा का पात्र अथवा करुणा से वंचित कौन है !

यह पृथ्वी के सभी मनुष्यो के नीचे दबा हुआ हरलाल स्वयं नही जानता था कि उसके मन के भीतर इतने स्नेह का रस, अवसर की प्रतीक्षा मे, इस तरह जमा हो गया था। वेणु के साथ खेलकर, उसे पढा कर, बीमारी के समय उसकी सेवा करके, हरलाल स्पष्ट रूप से समझ गया कि स्वयं की अवस्था की उन्नति करने की अपेक्षा भी मनुष्य के पास एक और वस्तु है—वह जिस समय मिल जाती है, उस समय उसे और कुछ अच्छा नही लगता।

वेणु भी हरलाल को पाकर बच गया। कारण, घर मे वह अकेला लडका था; एक बहुत छोटी, दूसरी तीन वर्ष की बहिन थी—वेणु उसे अपने साथ रखने योग्य भी नही समझता था। मुहल्ले मे उसके सम-वस्यक लड़कों का अभाव नही था; परन्तु अधरलाल अपने घर को कोठी समझकर अपने मन मे ठाने रहते थे कि मेलजोल करने को उपयुक्त लड़के वेणु के भाग्य में नहीं है। इसीलिए हरलाल उसका एकमात्र साथी हो गया। अनुकूल अवस्था में वेणु की जो सब दुष्टताएँ दस लोगों में बँट कर, एक प्रकार से सहन किये जाने योग्य हो सकती थी, वे सभी अकेले हरलाल को वहन करनी पडती थी। इन सब उपद्रवों को प्रतिदिन सहन करते-करते, हरलाल का स्नेह और भी मजबूत होने लगा। रतिकान्त कहने लगा—'हमारे सोना बाबू को मास्टर साहब मिट्टी कर देने को बैठे हैं।' अधरलाल को भी कभी-कभी लगने लगा, मास्टर के साथ छात्र का सम्बन्ध ठीक जैसे यथोचित नही हो रहा है। परन्तु हरलाल को वेणु के पास से हटा देना—अब ऐसी सामर्थ्य किसमें थी ?

४

वेणु की आयु अब ग्यारह वर्ष है। हरलाल एफ० ए० पास करके, छात्रवृत्ति पाकर थर्डइयर में पढ़ रहा है। इस बीच कॉलिज मे उसके दो-एक मित्र न बन गये हो, सो नही है; परन्तु वह ग्यारह वर्ष का बालक, उसके सब मित्रो से अधिक है। कॉलिज से लौटकर, वेणु को साथ लेकर वह गोलदिग्घी एवं किसी-किसी दिन ईडन-गार्डन मे घूमने जाता, उसे ग्रीक-इतिहास के वीर-पुरुषों की कहानियाँ सुनाता, उसे स्कॉट और विक्टर ह्यूगो की कहानियाँ, थोड़ी-थोड़ी करके, बगला मे सुनाता—उसके समीप अँग्रेजी कविता को उच्च स्वर से पढ़कर, उसका अनुवाद करके व्याख्या करता। उसके समीप शेक्सपियर के 'जूलियस सीजर' का अर्थ करके, उसमें से ऐन्टनी की वक्तृता को कण्ठस्थ कराने की चेष्टा करता। यह एकमात्र बालक, हरलाल के हृदय-उद्बोधन के लिए सोने की सलाई जैसा हो उठता। अकेले बैठकर जब पाठ याद करता था, उस समय अँग्रेजी साहित्य को वह इस तरह से मन मे ग्रहण नही करता था, अब वह इतिहास, विज्ञान, साहित्य जो कुछ पढ़ता, उसमे कुछ रस पाते ही उसे सबसे पहले वेणु को देने की उत्कण्ठा अनुभव करता एवं वेणु के मन में उस आनन्द का सचार करने की चेष्टा से ही उसकी स्वयं की समझने की शक्ति और आनन्द का अधिकार भी जैसे दुगुना बढ़ जाता था।

वेणु स्कूल से आते ही किसी तरह झटपट जलपान समाप्त कर, हरलाल के पास जाने के लिए एकदम परेशान हो उठता, उसकी माँ उसे किसी भी बहाने, किसी भी प्रलोभन से, अन्त:पुर में पकड़ कर नही रख पाती थी। ननीबाला को यह अच्छा नही लगता। उसे लगता, हरलाल अपनी नौकरी को बनाये रखने के लिए ही, इस तरह से उसे वश मे करने की चेष्टा कर रहा है। उसने एक दिन हरलाल को बुलाकर परदे की ओट में से कहा—'तुम मास्टर हो, लड़के को केवल सुबह एक घण्टा, शाम को एक घण्टा पढ़ाओगे—दिन-रात उसके साथ क्यों लगे रहते हो? आजकल तो वह माँ-बाप किसी को भी नही मानता है। वह कैसी शिक्षा पा रहा है? *पहले जो लडका माँ के कहते ही एकदम नाच उठता था, आज* उसे पुकारकर भी नही पाया जा सकता। वेणु हमारे बड़े घर का लड़का है, उसके साथ तुम्हारी इतनी घनिष्टता किस लिए है?'

उस दिन रतिकान्त अधरबाबू के समीप बड़ी सनसनीखेज बात कर रहा था कि उसकी जान-पहचान के तीन-चार आदमी हैं, जो बड़े आदमी के लड़के की मास्टरी करने के लिए आकर, लड़के के भोले मन को इस तरह वश में कर बैठे थे कि लड़के के सम्पत्ति के अधिकारी बनने पर, वे ही सर्वेसर्वा होकर लड़के को अपनी मर्जी से चलाने लगे। हरलाल की ओर इशारा करके ही ये सब बातें कही जा रही थीं, यह हरलाल को समझना बाकी नहीं रहा। फिर भी वह चुप रहकर सब को सहन करके चला गया। परन्तु आज वेणु की माँ की बात सुनकर उसकी छाती फट गई। वह समझ गया कि इन बड़े आदमियों के घर में बेचारे मास्टर की क्या पदवी है। गौशाला में हमारे बच्चे के लिए दूध इकट्ठा करने के लिए जिस तरह गायें पाली जाती हैं, उसी तरह उसे थोड़ी विद्या सिखाने के लिए एक मास्टर भी रख लिया गया है—छात्र के साथ स्नेहपूर्ण आत्मीयता का सम्बन्ध रखना एक इतना बड़ा अपराध है कि घर के नौकर से लेकर गृहिणी तक कोई उसे सहन नहीं कर पाते, और सभी लोग उसे स्वार्थ-साधन की एक चतुराई ही समझते हैं।

हरलाल ने कम्पित-कण्ठ से कहा—'माँ, वेणु को मैं केवल पढ़ाऊँगा, अब से उसके साथ मेरा और कोई सम्पर्क नहीं रहेगा।'

उस दिन दोपहर को, वेणु के साथ अपने खेलने के समय में, हरलाल कॉलेज से ही नहीं लौटा। किस तरह से सड़कों पर घूम-घूमकर उसने समय काटा, इसे वही जानता है। सन्ध्या होने पर जब वह पढ़ाने आया, उस समय वेणु मुँह भारी किए रहा। हरलाल अपनी अनुपस्थिति के बारे में कोई जवाब-देही न करके केवल पढ़ा गया—मगर उस दिन पढ़ाई सुविधानुसार नहीं हुई।

हरलाल प्रतिदिन रात रहते ही उठकर, अपने घर में बैठकर पढ़ता था। वेणु सुबह उठते ही, मुँह धोकर, उसके पास दौड़ा चला आता। बगीचे के पक्के हौज में मछलियाँ पली थीं। उन्हें चावल की लाई खिलाना इन लोगों का एक प्रिय काम था। बगीचे के एक कोने में कितने ही पत्थर सजाकर, छोटे-छोटे रास्ते और छोटा गेट और बेड़ा तैयार करके, वेणु ने बालखिल्य ऋषि के आश्रम के लिए उपयुक्त, एक अत्यन्त छोटा बगीचा बना रखा था। उस बगीचे में माली का कोई अधिकार नहीं था। सुबह इस बगीचे की देखभाल करना, उनका दूसरा काम था। उसके बाद धूप तेज हो जाने पर घर लौटकर, वेणु हरलाल के पास

पढ़ने के लिए बैठता। कल शाम को कहानी का जो अंश सुना नही जा सका था, उसे सुनने के लिए, आज वेणु यथा-साध्य सवेरे ही उठकर बाहर दौड़ आया था। उसने सोचा था, सुबह उठने के मामले मे, उसने आज मास्टर साहब को शायद जीत लिया है। मगर घर में आकर देखा, मास्टर साहब नही हैं। दरबान से पूछकर जाना—मास्टर साहब बाहर चले गये हैं।

उस दिन भी सुबह पढने के समय, वेणु अपने नन्हे से हृदय मे वेदना लिए, मुँह गम्भीर किये रहा। सुबह के समय हरलाल क्यों बाहर चला गया था, इस सम्बन्ध मे जिज्ञासा भी उसने नही की। हरलाल वेणु के मुँह की ओर न देखकर पुस्तकों के पन्नों पर ही दृष्टि रखकर किसी तरह पढ़ा गया। वेणु घर में अपनी माँ के पास जब खाने के लिए बैठा, तो उसकी माँ ने पूछा—'कल दोपहर से तुझे क्या हो गया है? बता तो सही? मुँह को हाँड़ी जैसा क्यों बनाये हुए है, अच्छी तरह खा भी नही रहा है—मामला क्या है?'

वेणु ने कोई उत्तर नही दिया। भोजन के बाद माँ उसे पास खीचकर, उसके शरीर पर हाथ फेरकर बहुत दुलार करके जब उससे बार-बार प्रश्न करने लगी, तो फिर वह वहाँ और नहीं ठहर सका—फफक-फफक कर रो उठा। बोला—'मास्टर साहब!' माँ ने कहा, 'मास्टर साहब क्या?'

वेणु नही कह सका कि मास्टर साहब ने क्या किया है। वह मौन अभियोग ऐसा था, जिसे समझना-समझाना कठिन था।

ननीवाला ने कहा—'मास्टर साहब शायद तेरी माँ बनकर तेरे साथ लग गये हैं!'

उस बात का कोई अर्थ न समझ पाकर, वेणु उत्तर दिये बिना चला गया।

५

इसी बीच मकान से अधरबाबू के कुछ कपड़े-लत्ते चोरी चले गये। पुलिस को खबर दी गयी। पुलिस ने खानातलाशी मे, हरलाल के बाक्स को देखना भी नही छोड़ा। रतिकान्त बड़े ही निरीह भाव से बोला—'जिस आदमी ने लिया है, वह क्या माल को बक्स के भीतर रखेगा?'

माल का कोई पता नही चला। इस तरह का नुकसान, अधरलाल के लिए

असह्य था। वे पृथ्वी के सब लोगों पर नाराज हो उठे। रतिकान्त ने कहा—'मकान में बहुत लोग रहते है; किसे दोष देंगे, किस पर सन्देह करेंगे? जिसकी जब खुशी होती है, आता है और चला जाता है।'

अधरलाल ने मास्टर को बुलाकर कहा—'देखो हरलाल, तुममें से किसी को भी मकान में रखना, मेरे लिए सुविधाजनक नही होगा। अब से तुम अलग मकान में रहकर वेणु को ठीक समय पर पढ़ा जाया करो, यही ठीक रहेगा। न हो, तो मैं तुम्हारे मासिक वेतन में दो रुपये की वृद्धि कर देने के लिए राजी हूँ।'

रतिकान्त तम्बाकू पीते-पीते बोला—'यह तो बड़ी अच्छी बात है, दोनों पक्षों के लिए भली है।'

हरलाल ने मुँह नीचा किये हुए सुना। उस समय कुछ कह नही सका। घर आकर अधरबाबू को चिट्ठी लिख भेजी कि अनेक कारणों से वेणु को पढ़ाना अब उसके लिए सुविधाजनक नही होगा, अतएव आज ही वह विदा लेने के लिए प्रस्तुत है।

उस दिन वेणु ने स्कूल से लौटकर देखा कि मास्टर साहब का घर सूना पड़ा है। उनका वह भग्नप्राय टीन का पिटारा भी नही है। रस्सी के ऊपर उनकी चादर और गमछा टँगे रहते थे; वह रस्सी तो है, परन्तु चादर और गमछा नही है। टेबुल के ऊपर कॉपियाँ और पुस्तकें बिखरी रहती थीं; उनके बदले, एक बड़ी बोतल के भीतर सुनहरी मछलियाँ झक-झक करती हुई, उठ गिर रही हैं। बोतल के मुँह के ऊपर, मास्टर साहब के हस्ताक्षर में वेणु के नाम लिखा गया एक कागज अटका हुआ था। और एक नयी, अच्छी जिल्द बँधी अँग्रेजी की 'चित्र-पुस्तक' रखी थी, जिसके भीतर के पन्ने पर एक ओर वेणु का नाम और उसके नीचे आज की तारीख, महीना और सन् लिखा हुआ था।

वेणु दौड़कर अपने पिता के पास जाकर बोला—'पिताजी, मास्टर साहब कहाँ गये हैं?'

पिता ने उसे पास खीच लिया और कहा—'वे काम छोड़कर चले गये हैं, बेटा।'

वेणु पिता से हाथ छुड़ाकर, बगल के कमरे के बिछौने पर जाकर, औंधा लेट कर रोने लगा। अधरबाबू व्याकुल हो गये, क्या किया जाए, वह कुछ भी नही सोच सके।

दूसरे दिन साढ़े दस बजे के करीब, हरलाल एक होटल के कमरे में, तख्त-पोश पर अनमना बैठा हुआ, कॉलेज जाएँ या नहीं, सोच रहा था। उसी समय अचानक देखा, पहले अधरबाबू के दरवान ने कमरे में प्रवेश किया और उसके पीछे वेणु, घर में घुसते ही हरलाल के गले से लिपट गया। हरलाल के कण्ठ का स्वर अटक गया। बात आरम्भ करते ही उसकी दोनों आँखों से पानी झर उठेगा—इस भय से वह कुछ बोल ही नहीं पाया।

वेणु ने कहा—'मास्टर साहब, हमारे घर चलो।'

वेणु अपने वृद्ध दरवान चन्द्रभान के पीछे पड गया कि जैसे भी हो, मास्टर साहब के मकान से उन्हे ले चलना पड़ेगा। मुहल्ले का जो कुली हरलाल के पिटारे को लाद कर लाया था, उसी के पास से पता लगाकर, स्कूल जाने की गाड़ी से, चन्द्रभान ने वेणु को हरलाल के होटल में लाकर उपस्थित कर दिया था।

हरलाल के लिए वेणु के मकान में जाना किसलिए एकदम असम्भव है, यह भी वह कह नहीं सका और उनके मकान में भी वापस नही जा सका। वेणु ने जो उसके गले से लटककर उसने कहा था 'हमारे मकान मे चलो'—इस स्पर्श और इस बात की स्मृति, कितने ही दिन और कितनी ही रात तक उसका कण्ठ दबाये हुए, जैसे उसके निःश्वास को अवरुद्ध कर बैठी। परन्तु, क्रमशः ऐसा दिन भी आ गया, जब दोनों ओर से सब कुछ समाप्त हो गया, हृदय की शिराओं को मजबूती से पकड़कर वेदना-निशाचर चमगादड़ की भाँति और झूलता हुआ नहीं रह सका।

६

हरलाल बहुत प्रयत्न करने पर भी, पढाई में फिर उस तरह मन नहीं लगा सका। वह किसी तरह भी स्थिर होकर पढने नहीं बैठ पाता था; जरा-सी पढने की चेष्टा करते ही, धम्म से पुस्तक को बन्द कर डालता एवं बिना कारण के ही द्रुतपद से सड़क पर घूमने निकल जाता। कॉलिज के लैक्चरों के नोट में भी बड़ा अन्तर पड़ जाता एवं बीच-बीच में जो सब अङ्क-अक्षर पढता, उसके साथ प्राचीन ईजिप्ट की चित्रलिपि के अतिरिक्त अन्य किसी वर्णमाला का सादृश नही था।

हरलाल समझ गया कि ये सब अच्छे लक्षण नही हैं। परीक्षा में यदि वह पास भी हो जाए, तो भी छात्रवृत्ति पाने की कोई सम्भावना नही है। और छात्रवृत्ति पाये विना, कलकत्ते मे उसका एक दिन भी नही चलेगा। उधर घर मे माँ को भी दो-चार रुपये भेजने चाहिए। आखिर बहुत कुछ विचार करके वह नौकरी की चेष्टा मे फिर बाहर निकला। नौकरी मिलना कठिन था, परन्तु न मिलना उसके लिए और भी कठिन था; इसीलिए निराश होकर भी वह पूरी तरह आशा नही छोड सका।

हरलाल के सौभाग्य से, एक बड़े अँग्रेज व्यापारी के ऑफिस मे उम्मेदवारी के लिए जाने पर, अचानक वह बडे साहब की नजर मे पड गया। साहब का विश्वास था कि वे मुँह देखकर ही आदमी को पहचान सकते हैं। हरलाल को बुलाकर, उसके साथ दो-चार बातें करके ही उन्होंने मन-ही-मन कहा—'यह आदमी चल सकेगा।' जिज्ञासा की—'काम जानते हो?' हरलाल ने कहा 'नही।' जमानतदार दे सकते हो? इसके उत्तर में भी 'नही।' 'किसी बड़े आदमी के पास से सार्टीफिकेट ला सकते हो?' तो किसी भी बडे आदमी को वह नही जानता था।

सुनकर साहब जैसे और भी खुश होकर बोले—'अच्छा ठीक है, पच्चीस रुपये वेतन पर काम शुरू करो। काम सीख जाने पर तरक्की हो जाएगी।' उसके बाद साहब ने उसकी वेशभूषा पर दृष्टि डालकर कहा—'पन्द्रह रुपये एडवांस दे रहा हूँ, ऑफिस के योग्य कपड़े तैयार करा लेना।'

कपड़े तैयार हुए। हरलाल ने दफ्तर मे भी अतिरिक्त काम करना आरम्भ किया। बड़े साहब उससे भूत की तरह परिश्रम कराने लगे। अन्य कर्मचारियों के घर चले जाने पर भी हरलाल की छुट्टी नही होती थी। किसी-किसी दिन, साहब के घर जाकर भी, उन्हे काम की प्रगति समझाकर आना पड़ता था।

इस तरह से, काम सीख लेने में हरलाल को विलम्ब नही हुआ। उसके सहयोगी कर्मचारियों ने उसे नाकामयाब बनाने की अनेक चेष्टाएँ कीं, उसके विरुद्ध ऊपर वालों के पास शिकायतें भी कीं,, परन्तु इस नि.शब्द, निरीह, सामान्य हरलाल का वे कोई अपकार नहीं कर सके।

जब उसका वेतन चालीस रुपये मासिक हो गया, तब हरलाल ने देश से माँ को लाकर, एक छोटी सी गली में एक छोटे से मकान में रहना आरम्भ कर

दिया। इतने दिनो वाद उसकी मां का दुःख दूर हुआ। मां बोली—'बेटा, अब मैं घर में बहू लाऊँगी।'

हरलाल माता के पांवो की धूलि लेकर बोला—'मां, उसके लिए माफ कर देना होगा।'

माता का एक और अनुरोध था, वे बोली—'तू जो दिन-रात अपने छात्र वेणुगोपाल की बातें करता है, उसे एक बार निमन्त्रित करके भोजन कराना है। उसे देखने की मुझे इच्छा होती है।'

हरलाल ने कहा—'मां, इस घर मे उसे कहाँ बैठाऊँगा? ठहरो, एक बडा मकान ले लेने दो, उसके बाद उसे निमन्त्रित करूँगा।'

७

हरलाल की वेतन-वृद्धि के साथ ही, छोटी गली से बड़ी गली और छोटे मकान से बड़े मकान में निवास-स्थान बदल लिया गया। फिर भी वह न जाने क्या सोचकर, अधरलाल के मकान मे जाने और वेणु को अपने घर बुला लाने के लिए, किसी तरह भी अपने मन को स्थिर नही कर सका।

शायद कभी उसका सकोच दूर नही होता। लेकिन इसी बीच अचानक खबर मिली कि वेणु की मां मर गयी हैं। सुनकर, पलभर की भी देर किये बिना वह अधरलाल के मकान मे जा उपस्थित हुआ।

इन दोनों असमवयसी मित्रों का, बहुत दिनों बाद, फिर एक बार मिलन हुआ। वेणु का अशौच का समय निकल गया, फिर भी इस मकान में हरलाल का आवागमन जारी रहा। परन्तु ठीक पहले जैसा अब कुछ नहीं था। वेणु अब बड़ा होकर, अँगूठे और तर्जनी के सहारे अपनी नयी उगी मूछों की रेखाओं को सँवारने लगा था। उसके चाल-चलन में भी बाबूपना फूट उठा था। अब उसके लिए उपयुक्त बन्धु-बान्धवों का अभाव नहीं था। ग्रामोफोन में थियेटर की नटियो के गाने के अतिरिक्त अन्य गाने बजाकर वह अपने मित्रों को प्रमुदित किये रहता था। पढने के कमरे से, वह पुरानी टूटी हुई चौकी और दागी टेबुल अब कही चली गयी थी। दर्पणों से, तस्वीरों से कमरा सज उठा था। परन्तु दूसरे वर्ष की सीमा को पार करने के लिए उसका कोई तकाजा नहीं दिखाई देता। पिता निश्चय

किये हुए थे कि दो-एक क्लास पास कराके वे विवाह के बाजार में लड़के का बाजारू मूल्य बढा देंगे। परन्तु लडके की माँ जानती थी और स्पष्ट रूप से कहती भी थी कि मेरे वेणु को सामान्य आदमी के लड़के की भाँति अपना गौरव प्रमाणित करने के लिए परीक्षाएँ पास करने का हिसाब नही देना होगा—लोहे के सन्दूक में कम्पनी के कागज (नोट और दस्तावेज) अक्षय बने रहे।' लड़के ने भी माँ की इस बात को मन-ही-मन अच्छी तरह समझ लिया था।

जो भी हो, वेणु के लिए वह अब नितान्त अनावश्यक है, इसे हरलाल स्पष्ट रूप से समझ गया और उसे रह-रह कर उस दिन की बात याद आने लगी, जिस दिन वेणु अचानक सुबह के समय उसके उस होटल वाले कमरे मे पहुँचकर उसके गले से लिपट कर बोला था—'मास्टर साहब, हमारे मकान में चलो।' यह वह वेणु नही है, वह मकान नहीं है, फिर अब मास्टर साहब को कौन पुकारेगा ?

हरलाल ने सोचा था, अब वेणु को अपने घर मे कभी-कभी बुलाया करेगा। परन्तु उसे बुलाने का साहस नही हुआ। एक बार सोचा कि 'उससे आने के लिए कहूँ, 'मगर फिर सोचा—'कहने से लाभ क्या है—वेणु शायद निमन्त्रण पाकर आ ही जाए, परन्तु रहने दो।'

मगर हरलाल की माँ ने उसे नही छोड़ा। वे बार-बार कहने लगी कि वे अपने हाथ से भोजन बनाकर उसे खिलाएँगी—'हाय लडके की माँ मर गयी है।'

अन्त मे हरलाल ने एक दिन उसे निमन्त्रित किया और कहा—'अधरबाबू से अनुमति लिए आता हूँ।'

मगर वेणु ने कहा—'अनुमति लेने की जरूरत नहीं। आप क्या यह समझते हैं कि मैं अब भी वही लल्लाबाबू हूँ ?'

हरलाल के घर वेणु भोजन करने के लिए आया। माँ ने इस कार्तिकेय जैसे सुन्दर लड़के को देखकर, अपने दोनों स्निग्ध नेत्रों के आशीर्वाद से अभिषिक्त कर, प्रयत्नपूर्वक भोजन कराया। उन्हें बार-बार यही खयाल आने लगा—'हाय, इस अल्प आयु में, ऐसे सुन्दर लडके को छोड़कर माँ जब मरी होंगी, उस समय उसके प्राण न जाने क्या कर रहे होंगे !'

भोजन समाप्त करते ही वेणु ने कहा—'मास्टर साहब, मुझे आज जरा जल्दी ही जाना होगा। मेरे दो-एक मित्रों के आने की बात है।'

कहकर जेब से सोने की घड़ी निकाल कर एक बार समय देखा, फिर संक्षेप में विदा लेकर अपनी बग्घी में जा बैठा। हरलाल घर के दरवाजे के पास खड़ा रहा। गाड़ी सम्पूर्ण गली को कँपाती हुई, क्षणभर में ही आँखों से ओझल हो गयी।

माँ ने कहा—'हरलाल, उसे बीच-बीच में बुला लाया कर। इस उम्र में उसकी माँ मर गयी है, यह याद करके ही मेरे प्राण न जाने कैसे हो उठते है।'

हरलाल चुप बना रहा। इस मातृहीन लड़के को सान्त्वना देने की उसने कोई आवश्यकता अनुभव नही की। दीर्घ निश्वास छोडकर मन-ही-मन कहा—'बस, हो गया। अब और कभी नही बुलाऊँगा। एक समय इसके यहाँ पाँच रुपये महीने की मास्टरी अवश्य की थी—परन्तु इन लोगो के लिए मैं सामान्य हरलाल मात्र हूँ।'

८

एक दिन सन्ध्या के बाद हरलाल ने ऑफिस से लौटकर देखा कि उसके पहिली मंजिल के कमरे के अँधेरे में कोई एक आदमी बैठा हुआ है। उस जगह कोई आदमी है, इसे लक्ष्य किये बिना ही वह शायद ऊपर चला जाता; परन्तु दरवाजे मे घुसते ही महसूस हुआ कि सेण्ट की गन्ध से वातावरण भर रहा है। कमरे में प्रवेश करके हरलाल ने जिज्ञासा की—'कौन महाशय है?'

वेणु बोल उठा—'मास्टर साहब, मैं हूँ!'

हरलाल ने कहा—'यह क्या मामला! कब आये?'

वेणु ने कहा—'बहुत देर का आया हूँ। आप इतनी देर करके ऑफिस से लौटेंगे, यह तो मैं जानता ही नहीं था।'

बहुत समय पहले वह जब निमन्त्रण पाकर भोजन करने आया था, उसके बाद फिर एक बार भी वेणु इस घर में नही आया था। बोला नही, कहा नहीं; आज अचानक इस तरह वह जो सन्ध्या के समय इस अँधेरे कमरे में प्रतीक्षा करता हुआ बैठा है, इससे हरलाल का मन उद्विग्न हो उठा।

ऊपर के कमरे मे जाकर, बत्ती जलाकर दोनों जने बैठे। हरलाल ने जिज्ञासा की—'सब ठीक तो है? कोई विशेष समाचार है?'

वेणु ने कहा—'पढाई-लिखाई के विषय मे उसे बड़ी ही अरुचि हो उठी है। कहाँ तक वह हर वर्ष उसी सेकेण्ड-इयर में अटका पड़ा रहेगा। अपने से बहुत कम उम्र के छोटे लड़को के साथ उसे पढना पड़ता है, उसे वडी लज्जा आती है। परन्तु पिताजी किसी तरह भी नहीं समझते।

हरलाल ने जिज्ञासा की—'तुम्हारी क्या इच्छा है ?'

वेणु ने कहा—उसकी इच्छा है कि वह विलायत जाए, बैरिस्टर वन आए। उसी के साथ पढने वाले ही नही, पढने-लिखने में उससे भी बहुत कच्चे लड़कों ने विलायत जाना निश्चित कर लिया है।

हरलाल ने कहा—'अपने पिता को अपनी इच्छा वतायी है ?'

वेणु ने कहा—'बतायी थी। पिताजी बोले, परीक्षा पास किये बिना ही विलायत जाने का प्रस्ताव वे सुनेंगे भी नही। परन्तु मेरा मन खराव हो गया है—इस जगह रहने पर, मैं किसी तरह भी पास नही कर सकूंगा।'

हरलाल चुपचाप बैठे-बैठे सोचने लगा। वेणु ने कहा—'आज इसी बात को लेकर, पिताजी ने मुझसे जो मुंह में आया वही कह डाला है। इसीलिए घर छोडकर चला आया हूँ! माँ के रहने पर ऐसा कभी नही हो सकता था।' कहते-कहते वह अभिमान में भरकर रोने लगा।

हरलाल ने कहा—'चलो, मेरे साथ अपने पिता के पास चलो। परामर्श करके जो ठीक होगा, वह निश्चित किया जाएगा!'

वेणु ने कहा—'नही, मैं वहाँ नहीं जाऊँगा।'

पिता के साथ झगड़ा करके, वेणु हरलाल के घर आकर ठहरे, यह बात हरलाल को बिलकुल ही अच्छी नही लगी। परन्तु मेरे घर में नही रह सकते, इस बात को कहना भी बड़ा कठिन था।

हरलाल ने सोचा—'कुछ देर बाद मन के जरा शान्त होते ही, इसे बहला कर घर ले जाऊँगा।' जिज्ञासा की—'तुम खाकर आये हो?'

वेणु बोला—'नही मुझे भूख नही है; मैं आज नही खाऊँगा।'

हरलाल बोला—'यह कैसे होगा!' झटपट माँ से जाकर कहा—'माँ, वेणु आया है, उसके लिए कुछ खाने को चाहिए।'

सुनकर माँ बडी खुश होकर खाने की तैयारी करने चली गयी। हरलाल ऑफिस के कपड़े उतारकर, मुँह-हाथ धोकर, वेणु के पास आ बैठा। जरा खांस-

कर, जरा इधर-उधर करके, उसने वेणु के कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा—'वेणु, यह काम अच्छा नहीं हो रहा है। पिता के साथ झगड़ा करके घर से चले आना, यह तुम्हारे लिए उपयुक्त नहीं है।'

सुनकर तुरन्त बिस्तर छोड़कर उठते हुए वेणु ने कहा—'आपके यहाँ यदि सुविधा न होगी, तो मैं सतीश के घर चला जाऊँगा।'

यह कहकर उसने चले जाने का उपक्रम किया। हरलाल उसका हाथ पकड़कर बोला—'ठहरो; कुछ खाते जाओ।'

वेणु ने नाराज होकर कहा—'नहीं खा सकूँगा।' कहकर और हाथ छुडा-कर घर से बाहर निकल आया।

इसी समय, हरलाल के लिए जो जलपान तैयार था, उसी को वेणु के लिए थाली में रखकर, माँ उन लोगों के सामने आ उपस्थित हुईं। कहा—'कहाँ जा रहे हो, बेटा ?'

वेणु ने कहा—'मुझे काम है माँ, जा रहा हूँ।'

माँ ने कहा—'यह कैसे हो सकता है बेटा, कुछ खाये बिना जा नहीं सकोगे।' यह कहकर, उसी बरामदे में आसन बिछाकर, उसे हाथ पकड़कर खिलाने को बैठा दिया।

वेणु नाराज होकर कुछ खा नहीं रहा था, भोजन का बहाना मात्र कर रहा था। इसी समय दरवाजे के पास एक गाड़ी आकर रुकी। पहले एक दर-बान और उसके पीछे स्वयं अधरबाबू मच-मच करते हुए सीढ़ियों पर चढ़कर, ऊपर आ उपस्थित हुए। वेणु का मुख विवर्ण हो गया।

माँ घर के भीतर चली गयी। अधरबाबू लड़के के सामने आकर क्रोध से कम्पित कण्ठ हो, हरलाल की ओर देखकर बोले—'अब समझा ! रतिकान्त ने मुझसे तभी कहा था; परन्तु तुम्हारे पेट में इतनी चालाकी है, इस पर मैंने विश्वास ही नहीं किया। तुमने सोचा होगा, वेणु को वश में करके उसकी गर्दन तोड़ खाओगे। परन्तु, मैं वैसा नहीं होने दूँगा। लड़का चोरी करेगा तो तुम्हारे नाम से पुलिस-केस कर दूंगा, तुम्हें जेल भेजकर ही छोड़ूँगा।'

यह कहकर वेणु की ओर देखकर कहा—'चल, उठ !' वेणु चुपचाप अपने पिता के पीछे-पीछे चला गया।

उस दिन भोजन हरलाल के मुँह के नीचे नहीं उतरा।

६

इस बार हरलाल की व्यापारिक फर्म न जाने किस कारण से गाँव से, प्रचुर परिमाण मे चावल-दाल खरीदने का काम करने लगी। इस सम्बन्ध में, हरलाल को प्रति सप्ताह ही शनिवार को, सुवह की गाड़ी से सात-आठ हजार रुपये लेकर गाँव जाना पड़ता। खुदरा व्यापारियों को हाथ-के-हाथ दाम चुका देने के लिए गाँव के एक विशेष केन्द्र मे उन लोगों का जो ऑफिस था, उस जगह दस और पाँच रुपये के नोट और नकद रुपये लेकर वह जाता, और वहाँ की रसीदें और खाता देखकर, पिछले सप्ताह का मोटा हिसाब मिलाकर, वर्तमान सप्ताह का काम चलाने के लिए रुपये रख आता। साथ में ऑफिस के दो दरबान जाते। हरलाल का कोई जमानतदार नही था, इसलिए ऑफिस मे काना-फूसी चली थी; परन्तु बड़े साहब ने अपने ऊपर सब उत्तरदायित्व लेते हुए कहा था—हरलाल के लिए जमानतदार की आवश्यकता नही है।

माघ के महीने से इसी तरह काम चल रहा था। चैत तक चलेगा, ऐसी सम्भावना थी। इस व्यापार के कारण, हरलाल विशेष व्यस्त रहता था। प्रायः ही उसे वहुत रात बीत जाने पर ऑफिस से लौटना पडता था।

एक दिन इसी तरह रात में लौटकर सुना कि वेणु आया था, माँ ने उसे खिला-पिला कर आदरपूर्वक बैठाया था। उस दिन उसके साथ बातचीत करके, उसके प्रति माँ का मन और भी स्नेह से आकर्षित हो गया।

ऐसा ही और भी दो-एक दिन होने लगा। माँ बोली—'घर मे माँ नही है न, इसीलिए उस जगह उसका मन टिकता नही है। मैं वेणु को तेरे छोटे भाई की तरह, अपने लड़के की तरह ही देखती हूँ। वह स्नेह पाकर, मुझे केवल माँ कहकर पुकारने के लिए ही यहाँ आता है।' यह कहकर आँचल के कोने से उन्होंने आँखें पोछ ली।

हरलाल की एक दिन वेणु फिर से भेंट हुई। उस दिन वह उसी की प्रतीक्षा करता हुआ बैठा था। बड़ी रात तक खूब बातें होती रहीं। वेणु बोला—'पिताजी, आजकल ऐसे हो उठे है कि मैं किसी तरह भी घर मे नहीं टिक पा रहा हूँ। विशेषकर सुन रहा हूँ कि वे अपना विवाह करने के लिए तैयार हो रहे है। रति वावू सम्वन्ध लेकर आते रहते है—उनके साथ परामर्श चल रहा है।

पहले मेरे कहीं चले जाने पर, देर हो जाने से पिताजी अस्थिर हो उठते थे; अब यदि मैं दो-चार दिन घर न लौटूं तो उससे वे आराम ही अनुभव करते है। मेरे घर में रहने पर, विवाह की चर्चा सावधानी से करनी पड़ती है; इसलिए मेरे न रहने पर वे सुख की सांस लेते है। यह विवाह यदि हुआ तो फिर मैं घर में नहीं रह सकूंगा। मुझे आप उद्धार का कोई मार्ग दिखा दीजिए—मैं स्वतन्त्र होना चाहता हूँ।'

स्नेह और वेदना से हरलाल का हृदय परिपूर्ण हो उठा। सकट के समय वह और सबको छोड़कर, अपने उन्ही मास्टर साहब के पास आया है, इससे दुःख के साथ-साथ उसे आनन्द भी हुआ। परन्तु, मास्टर साहब मे सामर्थ्य ही कितनी है !

वेणु ने कहा—'जैसे भी हो सके, विलायत जाकर बैरिस्टर बन आने पर शायद इस विपत्ति से छुटकारा पा सकूं।'

हरलाल ने कहा—'अधरबाबू क्या जाने देंगे ?'

वेणु ने कहा—'मेरे चले जाने पर वे बच जाएँगे। परन्तु रुपयों से उनका ऐसा मोह है कि विलायत के खर्च के लिए रुपये उनसे सहज ही नहीं लिये जा सकते। कोई चालबाजी करनी पड़ेगी।'

हरलाल ने वेणु की चतुराई देखकर, हँसकर कहा—'क्या चतुराई हो सकती है ?'

वेणु ने कहा—'मैं हैण्ड नोट लिखकर रुपये उधार लूंगा। पावनेदार जब मेरे नाम नालिश करेगा, पिताजी उस समय मजबूर होकर उसे चुकता कर ही देंगे। उन्ही रुपयों से मैं भागकर विलायत चला जाऊँगा। वहाँ चले जाने पर वे खर्च भेजे बिना नही रह सकेंगे।'

हरलाल ने कहा—'तुम्हे रुपये उधार देगा कौन ?'

वेणु ने कहा—'आप नही दे सकेंगे ?'

हरलाल ने आश्चर्य में भरकर कहा—'मैं !' उसके मुंह से और कोई बात नही निकली।

वेणु ने कहा—'क्यों, आपके दरवान तो गड्डी-की-गड्डी रुपये घर लाते रहते हैं।'

हरलाल ने हँसकर कहा—'जिस तरह के वे मेरे दरवान है, रुपया भी वैसा ही है।'

यह कहकर, ऑफिस के रुपयों का क्या उपयोग होता है, यह वेणु को समझा दिया—'ये रुपये केवल एक रात के लिए ही इस दरिद्र के घर में आश्रय लेते है, सवेरा होते ही दशों दिशाओ मे प्रस्थान कर जाते है।'

वेणु ने कहा—'आप लोगों के साहब मुझे उधार नही दे सकेंगे? न होगा, मैं सूद अधिक कर दूंगा।'

हरलाल ने कहा—'तुम्हारे पिता यदि सिक्योरिटी दें, तो मेरे अनुरोध करने पर शायद दे भी सकते हैं।'

वेणु ने कहा—'बाबा यदि सिक्योरिटी ही देंगे तो क्या रुपये ही नही देंगे?'

तर्क इसी जगह समाप्त हो गया। हरलाल मन-ही-मन सोचने लगा—'मेरे पास यदि कुछ होता, तो घर-मकान, जमीन-जमा सबको बेच-बाच कर रुपये दे देता। परन्तु एकमात्र असुविधा यही है कि घर-मकान, जमीन-जमा कुछ भी नही है।'

१०

एक शुक्रवार की रात्रि मे, हरलाल के घर के सामने बग्घी आकर खडी हुई। वेणु के गाडी से उतरते ही, हरलाल के ऑफिस का दरबान उसे एक बड़ा सलाम करके, घबराकर ऊपर घर मे बाबू को खबर देने पहुँचा। हरलाल उस समय, अपने सोने के कमरे में, फर्श पर बैठा हुआ रुपये गिन रहा था। वेणु ने उसी कमरे में प्रवेश किया। आज वह कुछ अधिक नयी साज-सज्जा में था—सुन्दर धोती-चादर के बजाय शरीर पर पारसी कोट और पतलून पहने, सिर पर कैप लगाकर आया था। उसके दोनो हाथो की अँगुलियो मे मणि-मुक्ता की अँगूठियाँ जगमगा रही थी। गले से लटकती हुई मोटी सोने की चेन मे बँधी घड़ी, छाती के ऊपरवाली जेब में रखी थी। कोट की आस्तीन के भीतर से, कमीज के कफ मे हीरे के बटन दिखाई पड़ रहे थे।

हरलाल ने रुपये गिनना बन्द करके, आश्चर्यचकित होकर कहा—'यह क्या

मामला है ? इतनी रात में, इस वेष में कैसे ?'

वेणु ने कहा—'परसों पिताजी का विवाह है। उन्होंने यह मुझसे छिपाकर रखा, परन्तु मुझे खबर मिल ही गयी थी। मैंने पिताजी से कहा था कि मैं कुछ दिनों के लिए अपने वारकपुर के बगीचे में जाऊँगा। सुनकर वे बड़ी खुशी से तैयार हो गये। इसीलिए बगीचे मे जा रहा हूँ। इच्छा होती है, फिर नही लौटूँ। यदि साहस होता तो गंगा के पानी में डूबकर मर जाता।'

कहते-कहते वेणु रो पडा। हरलाल की छाती में जैसे छुरी चुभने लगी। एक अपरिचित स्त्री द्वारा आकर वेणु की माँ का घर, माँ की चारपाई, माँ के स्थान पर अधिकार कर लेने से, वेणु का स्नेह-स्मृति-जड़ित घर, उसके लिए कैसा कण्टकमय हो उठेगा, यह हरलाल अच्छी तरह समझता था। उसने मन-ही-मन सोचा, पृथ्वी पर गरीब होकर जन्म लिये बिना भी दु.ख एव अपमान का अन्त नही है। वेणु को क्या कहकर वह सान्त्वना दे, इसे कुछ भी न सोच पाकर, वेणु के हाथो को उसने अपने हाथ में ले लिया। तभी एक बात उसके मन में आयी। उसने सोचा, ऐसी चिन्ता और दु ख के समय वेणु कैसे इतनी तैयारियाँ कर सकेगा।

हरलाल को अपनी अँगूठी की ओर आँखें गड़ाये हुए देखकर वेणु ने उनके मन के प्रश्न को जैसे भाँप लिया। वह बोला—'ये अँगूठियाँ मेरी माँ की है।'

सुनकर हरलाल ने बड़े कष्ट से आँखों के पानी को रोक लिया। कुछ क्षण बाद कहा—'वेणु, खाकर आये हो ?'

वेणु ने कहा—'हाँ, आपने अभी भोजन नही किया है ?'

हरलाल ने कहा—'रुपयो को गिनकर आइरन-सेफ में रखे बिना मैं कमरे से बाहर नही निकल सकूँगा।'

वेणु ने कहा—'आप खाना खा आइए, आपके साथ बहुत बातें करनी है। मैं कमरे में बैठा हूँ, माँ आपका भोजन लिए बैठी होगी।'

हरलाल ने कुछ इतस्ततः करने के बाद कहा—'मैं झटपट खाकर आ रहा हूँ।'

हरलाल झटपट भोजन समाप्त कर, माँ को लेकर कमरे में प्रविष्ट हुआ। वेणु ने उन्हे प्रणाम किया; उन्होने वेणु की ठोड़ी का स्पर्श करके चुम्बन लिया। हरलाल के द्वारा सब खबर पाकर, उनकी छाती जैसे फटी जा रही थी। अपना

सम्पूर्ण स्नेह देकर भी वेणु के अभाव की वे पूर्ति नहीं कर सकेंगी, यही उनका दु:ख था।

चारों ओर बिखरे हुए रुपयों के बीच तीनों जने बैठकर, वेणु के बचपन के दिनों की बातें करने लगे। मास्टर साहब के साथ रहते समय की, उसकी कितने ही दिनों की कितनी ही घटनाएँ। उनके बीच-बीच में उस असयत-स्नेह-शालिनी माँ की बातें भी आने लगीं।

इस तरह रात बहुत बीत गयी। अचानक एक समय घड़ी खोलकर वेणु ने कहा—'बस, अब देर करने से गाड़ी छूट जाएगी।'

हरलाल की माँ ने कहा—'बेटा, आज रात में यहीं रहो न! कल सुबह हरलाल के साथ ही बाहर निकलना।'

वेणु ने प्रार्थना करते हुए कहा—'नहीं माँ, यह अनुरोध मत कीजिए। आज रात में जिस तरह भी हो, मुझे जाना ही होगा।'

फिर हरलाल से कहा—'मास्टर साहब, इन अँगूठी-घड़ी आदि को बगीचे में ले जाना निरापद नहीं है। आपके पास ही रखे जाता हूँ, लौटकर ले जाऊँगा। अपने दरबान से कह दीजिए, मेरी गाड़ी में से चमड़े का हैण्ड-बैग ला दे। उसी में इन सबको रख दूँगा।'

ऑफिस का दरबान गाड़ी में से बैग ले आया। वेणु ने अपनी चेन, घड़ी, अँगूठी, बटन आदि सब खोलकर बैग में रख दिये। सतर्क हरलाल ने उस बैग को लेकर, उसी समय आइरन-सेफ में रख दिया।

वेणु ने हरलाल की माँ के पाँवों की धूलि ली। उन्होंने रुद्ध कण्ठ से आशीर्वाद दिया—'माँ जगदम्बा, तुम्हारी माँ बनकर, तुम्हारी रक्षा करें।'

उसके बाद वेणु ने हरलाल के पाँव छूकर प्रणाम किया। पहले किसी दिन उसने हरलाल को इस तरह से प्रणाम नहीं किया था। हरलाल कोई बात न कहकर, उसकी पीठ पर हाथ रखकर, उसके साथ-साथ नीचे उतर गया। गाड़ी की लालटेन में प्रकाश किया गया, दोनों घोड़े अधीर हो उठे। कलकत्ते की गैस-लोक-खचित रात्रि में, वेणु को लेकर गाड़ी अदृश्य हो गयी।

हरलाल अपने कमरे में आकर, बहुत देर तक चुपचाप बैठा रहा। फिर दीर्घ नि:श्वास छोड़कर, रुपये गिन-गिन कर और गड्डियाँ बनाकर एक-एक

थैली में भरने लगा। नोट पहले ही गिने जाकर, थैलीबन्द होकर लोहे के सन्दूक में रखे जा चुके थे।

११

लोहे के सन्दूक की ताली सिर के तकिये के नीचे रखकर, उन रुपयों वाले कमरे में ही हरलाल बड़ी रात तक सोता रहा। अच्छी नींद नहीं आयी। उसने स्वप्न में देखा—वेणु की माँ परदे की ओट में से, उसे उच्च स्वर से डाँट रही है। बात कुछ भी स्पष्ट नहीं सुनी जा रही थी; केवल उस अनिर्दिष्ट कण्ठ-स्वर के साथ-साथ वेणु की माँ के चुन्नी-पन्ना-हीरा के अलकारों से निकलती लाल, हरी, शुभ्र रश्मियों की सुइयाँ अन्धकार के काले परदे को फाड़कर बाहर निकलने को छटपटा रही थीं। हरलाल प्राणप्रण से वेणु को पुकारने की चेष्टा कर रहा था; परन्तु उसके गले से किसी तरह भी स्वर बाहर नहीं निकल रहा था; इसी समय धमाके से न जाने क्या टूट पड़ने से, परदा फटकर गिर पड़ा—चौंककर आँखें गड़ाकर हरलाल ने देखा, घटाटोप अन्धकार छाया है। अचानक हवा के एक झौंके ने उठकर, झनझनाते हुए, खिड़की को ठेलकर, दीपक बुझा दिया था। हरलाल का सम्पूर्ण शरीर पसीने से भीग गया था। उसने झटपट उठकर, दियासलाई से दीपक जलाया। घड़ी में देखा, चार बज गये थे और सोने का समय नहीं है—रुपये लेकर गाँव जाने के लिए तैयार होना पड़ेगा।

हरलाल के मुँह धोकर लौटते समय, माँ ने अपने कमरे में से कहा—'क्यों बेटा, उठ गये?'

हरलाल ने प्रभात में सबसे पहले माता का मंगल-मुख देखने के लिए कमरे में प्रवेश किया। माँ ने उसका प्रणाम लेकर, मन-ही-मन उसे आशीर्वाद देकर कहा—'बेटा, मैंने अभी स्वप्न देखा कि तू जैसे बहू लेने जा रहा है। सुबह का स्वप्न क्या मिथ्या होगा?'

हरलाल ने हँसकर कमरे में प्रवेश किया। रुपये और नोटों की थैलियों को लोहे के सन्दूक में से निकाल कर कैश-बॉक्स में बन्द करने का उद्योग करने लगा। अचानक उसकी छाती धड़क उठी—नोटों की दो-तीन थैलियाँ खाली थीं।

उसे लगा कि वह स्वप्न देख रहा है। थैलियों को
पटका—मगर उससे सूनी थैलियों की शून्यता
की आशा से, थैलियों के बन्धन खोलकर खूब अच्छी
थैली में से दो चिट्ठियाँ बाहर निकल पड़ी। वेणु के हाथ
चिट्ठी उसके पिता के नाम थी और एक हरलाल के लिए।

वह झटपट खोलकर पढ़ने लगा। आँखों से जैसे देख
को लगा, जैसे प्रकाश यथेष्ट नहीं है। वह बत्ती उकसाने
जो पढ़ता था, उसे अच्छी तरह समझ नहीं पा रहा था।
भूल गया था वह।

बात यही थी कि वेणु तीन हजार रुपये के दस-दस रुप
विलायत चला गया था, आज सुबह ही जहाज पर चढ़ने की
जिस समय खाना खाने गया था, उसी समय वेणु ने यह काण्ड
था कि 'पिताजी को चिट्ठी लिख दी है, वे मेरा यह कर्ज चुका
स्थित मेरा बैग खोलकर देख लीजिएगा। उसके भीतर जो गह
मूल्य है, सो ठीक से नहीं जानता; शायद तीन हजार रुपयों से
माँ यदि जीवित रहती, तो पिताजी द्वारा मुझे विलायत जाने के
पर भी, इन गहनों को देकर वे अवश्य ही मेरे लिए खर्च का प्र-
मेरी माता के गहने पिताजी किसी और को दें, इसे मैं सहन नहीं
इसीलिए जैसे भी हो सका, मैं ही उन्हें ले आया हूँ। पिताजी यदि
देर करें, तो आप आसानी से इन गहनों को बेचकर, अथवा
रुपया ले सकेंगे। यह मेरी माँ की वस्तु है—
अतिरिक्त अनेक बातें थी—मगर वे कोई काम

हरलाल कमरे में ताला लगाकर, झटपट
और दौड़ पड़ा। [illegible] ने खाना
जानता था। [illegible] हरलाल
सवेरे ही रवाना हो [illegible]

* कलकत्ता के म।
के नवाब वाजिद

वेणु है, यह भी उसके अनुमान से परे था, एवं उस जहाज को पकड़ने का क्या उपाय हो सकता है, इसे भी वह नहीं सोच सका।

मटियाबुर्ज से उसके घर की ओर जिस समय गाड़ी लौटी, उस समय सुबह की धूप से कलकत्ता शहर जग उठा था। हरलाल की आँखों को कुछ नहीं दिखाई पड़ा। उसका हतबुद्धि अन्तःकरण, एक कलेवरहीन, दारुण संकट को जैसे प्राणपण से धक्का मार रहा था—परन्तु उसे जरा भी हिला नहीं पा रहा था। जिस मकान में उसकी माँ रहती थी, इतने दिनों तक जिस मकान में पाँव रखते ही कर्मक्षेत्र की सारी थकान और परेशानियों की वेदना क्षणभर में ही दूर हो जाया करती थीं, उसी मकान के सामने आकर गाड़ी खड़ी हो गयी—गाड़ीवान का किराया चुकाकर, उसी मकान में वह गहरी निराशा और भय से भरा प्रविष्ट हुआ।

माँ उद्विग्न होकर बरामदे में खड़ी थी। उन्होंने जिज्ञासा की—'बेटा कहाँ गये थे?'

हरलाल बोल उठा—'माँ, तुम्हारे लिए बहू लाने गया था।' कहकर सूखे कण्ठ से हँसते-हँसते वहीं मूर्च्छित होकर गिर पड़ा।

'ओ माँ, क्या हो गया!'—कह कर माँ झटपट पानी लाकर, उसके मुँह पर छींटे देने लगी।

कुछ क्षण बाद हरलाल आँखें खोलकर, शून्य दृष्टि से चारों ओर देखकर उठ बैठा। उसने कहा—'माँ, तुम लोग परेशान मत होओ। मुझे जरा अकेला रहने दो।' यह कहकर, उसने झटपट कमरे के भीतर घुसकर भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया। माँ दरवाजे के बाहर, जमीन पर बैठी रही। फाल्गुन की धूप उनके सारे शरीर पर पड़ने लगी। वे बन्द दरवाजे पर सिर रखकर, रह-रहकर पुकारने लगीं—'हरलाल, बेटा हरलाल!'

हरलाल ने कहा—'माँ, थोड़ी देर में ही मैं बाहर निकल आऊँगा; इस समय

ी जगह बैठकर जप करने लगी।

ने आकर, दरवाजे पर दस्तक देते हुए कहा—'बाबू,

ो नहीं मिल सकेगी।'

... बैंक की गाड़ी से आना नहीं होगा।'

उसे लगा कि वह स्वप्न देख रहा है। थैलियों को लेकर सन्दूक पर जोर से पटका—मगर उससे सूनी थैलियो की शून्यता अप्रमाणित नही हुई। फिर भी व्यर्थ की आशा से, थैलियों के बन्धन खोलकर खूब अच्छी तरह झटका दिया, एक थैली में से दो चिट्ठियाँ बाहर निकल पड़ी। वेणु के हाथ की लिखावट थी—एक चिट्ठी उसके पिता के नाम थी और एक हरलाल के लिए।

वह झटपट खोलकर पढ़ने लगा। आँखो से जैसे देख नही पा रहा था। मन को लगा, जैसे प्रकाश यथेष्ट नही है। वह बत्ती उकसाने लगा। मगर फिर भी जो पढता था, उसे अच्छी तरह समझ नहीं पा रहा था। बाग्ला भाषा ही जैसे भूल गया था वह।

बात यही थी कि वेणु तीन हजार रुपये के दस-दस रुपये वाले नोट लेकर विलायत चला गया था, आज सुबह ही जहाज पर चढ़ने की बात थी। हरलाल जिस समय खाना खाने गया था, उसी समय वेणु ने यह काण्ड किया था। लिखा था कि 'पिताजी को चिट्ठी लिख दी है, वे मेरा यह कर्ज चुका देंगे। इसके अतिरिक्त मेरा बैग खोलकर देख लीजिएगा। उसके भीतर जो गहने हैं, उनका क्या मूल्य है, सो ठीक से नही जानता; शायद तीन हजार रुपयो से अधिक ही होगा। माँ यदि जीवित रहती, तो पिताजी द्वारा मुझे विलायत जाने के लिये रुपये न देने पर भी, इन गहनो को देकर वे अवश्य ही मेरे लिए खर्च का प्रबंध कर देतीं। मेरी माता के गहने पिताजी किसी और को दें, इसे मैं सहन नही कर सकता। इसीलिए जैसे भी हो सका, मैं ही उन्हे ले आया हूँ। पिताजी यदि रुपये देने में देर करें, तो आप आसानी से इन गहनो को बेचकर, अथवा गिरवी रखकर रुपया ले सकेंगे। यह मेरी माँ की वस्तु है—इसलिए मेरी ही वस्तु है।' इसके अतिरिक्त अनेक बातें थी—मगर वे कोई काम की बातें नही थी।

हरलाल कमरे मे ताला लगाकर, झटपट एक गाडी लेकर गंगा के घाट की ओर दौड़ पड़ा। किस जहाज से वेणु ने यात्रा की है, उसका नाम भी वह नहीं जानता था। मटियाबुर्ज* तक जाने पर हरलाल को खबर मिली, कि दो जहाज सवेरे ही रवाना हो गये हैं। दोनों ही इङ्गलैंड जाएँगे। उनमें से किस जहाज मे

* कलकत्ता के गगाघाट पर स्थित एक प्रसिद्ध स्थान का नाम, जहाँ अवध के नवाब वाजिद अली शाह को अँग्रेजो ने कैद करके रखा था।

वेणु है, यह भी उसके अनुमान से परे था, एव उस जहाज को पकड़ने का क्या उपाय हो सकता है, इसे भी वह नही सोच सका ।

मटियाबुर्ज से उसके घर की ओर जिस समय गाड़ी लौटी, उस समय सुबह की धूप से कलकत्ता शहर जग उठा था। हरलाल की आँखो को कुछ नही दिखाई पड़ा । उसका हतबुद्धि अन्तःकरण, एक कलेवरहीन, दारुण संकट को जैसे प्राणपण से धक्का मार रहा था—परन्तु उसे जरा भी हिला नही पा रहा था। जिस मकान में उसकी माँ रहती थी, इतने दिनों तक जिस मकान मे पाँव रखते ही कर्मक्षेत्र की सारी थकान और परेशानियों की वेदना क्षणभर में ही दूर हो जाया करती थी, उसी मकान के सामने आकर गाड़ी खड़ी हो गयी—गाड़ीवान का किराया चुकाकर, उसी मकान मे वह गहरी निराशा और भय से भरा प्रविष्ट हुआ।

माँ उद्विग्न होकर बरामदे में खड़ी थी । उन्होंने जिज्ञासा की—'बेटा कहाँ गये थे ?'

हरलाल बोल उठा—'माँ, तुम्हारे लिए बहू लाने गया था।' कहकर सूखे कण्ठ से हँसते-हँसते वहीं मूच्छित होकर गिर पड़ा ।

'ओ माँ, क्या हो गया !'—कह कर माँ झटपट पानी लाकर, उसके मुँह पर छींटे देने लगी ।

कुछ क्षण बाद हरलाल आँखें खोलकर, शून्य दृष्टि से चारो ओर देखकर उठ बैठा। उसने कहा—'माँ, तुम लोग परेशान मत होओ। मुझे जरा अकेला रहने दो।' कहकर, उसने झटपट कमरे के भीतर घुसकर भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया। माँ दरवाजे के बाहर, जमीन पर बैठी रही। फाल्गुन की धूप उनके सारे शरीर पर पड़ने लगी। वे बन्द दरवाजे पर सिर रखकर, रह-रहकर पुकारने लगीं—'हरलाल, बेटा हरलाल !'

हरलाल ने कहा—'माँ, थोड़ी देर मे ही मैं बाहर निकल आऊँगा; इस समय तुम जाओ।'

माँ धूप में उसी जगह बैठकर जप करने लगी।

ऑफिस के दरवान ने आकर, दरवाजे पर दस्तक देते हुए कहा—'बाबू, जल्दी बाहर निकलिए वरना फिर गाड़ी नहीं मिल सकेगी।'

हरलाल ने भीतर से कहा—'आज सात बजे की गाड़ी से जाना नहीं होगा।'

उसे लगा कि वह स्वप्न देख रहा है। थैलियों को लेकर सन्दूक पर जोर से पटका—मगर उससे सूनी थैलियों की शून्यता अप्रमाणित नहीं हुई। फिर भी व्यर्थ की आशा से, थैलियों के बन्धन खोलकर खूब अच्छी तरह झटका दिया, एक थैली में से दो चिट्ठियाँ बाहर निकल पड़ी। वेणु के हाथ की लिखावट थी—एक चिट्ठी उसके पिता के नाम थी और एक हरलाल के लिए।

वह झटपट खोलकर पढने लगा। आँखों से जैसे देख नहीं पा रहा था। मन को लगा, जैसे प्रकाश यथेष्ट नहीं है। वह बत्ती उकसाने लगा। मगर फिर भी जो पढ़ता था, उसे अच्छी तरह समझ नहीं पा रहा था। बांग्ला भाषा ही जैसे भूल गया था वह।

बात यही थी कि वेणु तीन हजार रुपये के दस-दस रुपये वाले नोट लेकर विलायत चला गया था, आज सुबह ही जहाज पर चढ़ने की बात थी। हरलाल जिस समय खाना खाने गया था, उसी समय वेणु ने यह काण्ड किया था। लिखा था कि 'पिताजी को चिट्ठी लिख दी है, वे मेरा यह कर्ज चुका देंगे। इसके अतिरिक्त मेरा बैग खोलकर देख लीजिएगा। उसके भीतर जो गहने है, उनका क्या मूल्य है, सो ठीक से नहीं जानता; शायद तीन हजार रुपयों से अधिक ही होगा। माँ यदि जीवित रहती, तो पिताजी द्वारा मुझे विलायत जाने के लिये रुपये न देने पर भी, इन गहनों को देकर वे अवश्य ही मेरे लिए खर्च का प्रबंध कर देती। मेरी माता के गहने पिताजी किसी और को दें, इसे मैं सहन नहीं कर सकता। इसीलिए जैसे भी हो सका, मैं ही उन्हें ले आया हूँ। पिताजी यदि रुपये देने में देर करें, तो आप आसानी से इन गहनों को बेचकर, अथवा गिरवी रखकर रुपया ले सकेंगे। यह मेरी माँ की वस्तु है—इसलिए मेरी ही वस्तु है।' इसके अतिरिक्त अनेक बातें थी—मगर वे कोई काम की बातें नहीं थी।

हरलाल कमरे में ताला लगाकर, झटपट एक गाड़ी लेकर गंगा के घाट की ओर दौड़ पड़ा। किस जहाज से वेणु ने यात्रा की है, उसका नाम भी वह नहीं जानता था। मटियाबुर्ज* तक जाने पर हरलाल को खबर मिली, कि दो जहाज सवेरे ही रवाना हो गये हैं। दोनों ही इङ्गलैंड जाएँगे। उनमें से किस जहाज में

---

* कलकत्ता के गंगाघाट पर स्थित एक प्रसिद्ध स्थान का नाम, जहाँ अवध के नवाब वाजिद अली शाह को अँग्रेजों ने कैद करके रखा था।

वेणु है, यह भी उसके अनुमान से परे था, एवं उस जहाज को पकड़ने का क्या उपाय हो सकता है, इसे भी वह नही सोच सका।

मटियाबुर्ज से उसके घर की ओर जिस समय गाड़ी लौटी, उस समय सुबह की धूप से कलकत्ता शहर जग उठा था। हरलाल की आँखों को कुछ नही दिखाई पड़ा। उसका हतबुद्धि अन्तःकरण, एक कलेवरहीन, दारुण सकट को जैसे प्राणपण से धक्का मार रहा था—परन्तु उसे जरा भी हिला नही पा रहा था। जिस मकान मे उसकी माँ रहती थी, इतने दिनो तक जिस मकान में पाँव रखते ही कर्मक्षेत्र की सारी थकान और परेशानियों की वेदना क्षणभर मे ही दूर हो जाया करती थी, उसी मकान के सामने आकर गाड़ी खड़ी हो गयी—गाड़ीवान का किराया चुकाकर, उसी मकान मे वह गहरी निराशा और भय से भरा प्रविष्ट हुआ।

माँ उद्विग्न होकर बरामदे में खड़ी थी। उन्होंने जिज्ञासा की—'बेटा कहाँ गये थे?'

हरलाल बोल उठा—'माँ, तुम्हारे लिए बहू लाने गया था।' कहकर सूखे कण्ठ से हँसते-हँसते वही मूर्च्छित होकर गिर पड़ा।

'ओ माँ, क्या हो गया!'—कह कर माँ झटपट पानी लाकर, उसके मुँह पर छींटे देने लगी।

कुछ क्षण बाद हरलाल आँखें खोलकर, शून्य दृष्टि से चारों ओर देखकर उठ बैठा। उसने कहा—'माँ, तुम लोग परेशान मत होओ। मुझे जरा अकेला रहने दो।' कहकर, उसने झटपट कमरे के भीतर घुसकर भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया। माँ दरवाजे के बाहर, जमीन पर बैठी रही। फाल्गुन की धूप उनके सारे शरीर पर पड़ने लगी। वे बन्द दरवाजे पर सिर रखकर, रह-रहकर पुकारने लगी—'हरलाल, बेटा हरलाल!'

हरलाल ने कहा—'माँ, थोड़ी देर मे ही मैं बाहर निकल आऊँगा; इस समय तुम जाओ।'

माँ धूप में उसी जगह बैठकर जप करने लगीं।

ऑफिस के दरवान ने आकर, दरवाजे पर दस्तक देते हुए कहा—'बाबू, जल्दी बाहर निकलिए वरना फिर गाड़ी नही मिल सकेगी।'

हरलाल ने भीतर से कहा—'आज सात बजे की गाड़ी से जाना नहीं होगा।'

दरवान ने कहा—'तब किस समय चलेंगे ?'

हरलाल ने कहा—'वह मैं, बाद में बताऊँगा।'

दरवान सिर हिलाकर, हाथ मटकाकर नीचे चला गया।

हरलाल सोचने लगा—'यह बात कहूँ किससे ? यह तो चोरी है ! वेणु को क्या जेल भेजवाऊँगा ?'

अचानक उन गहनों की बात याद आयी। वह बात तो एकदम भूल ही गया था। बैग खोलकर देखा, उसके भीतर केवल अँगूठी, घड़ी, बटन, हार ही नहीं थे—ब्रेसलेट, चिक, माथे का टीका, मोतियों की माला आदि और भी अनेक मूल्यवान गहने थे उनकी कीमत तीन हजार रुपयों से बहुत अधिक थी। परन्तु यह भी तो चोरी है। यह भी तो वेणु के नहीं हैं। यह बैग जब तक उसके घर में रहेगा, तब तक उसकी मुसीबत ही है।

अब और देर न करके, अधरलाल की वह चिट्ठी और बैग लेकर हरलाल कमरे से बाहर निकला।

माँ ने जिज्ञासा की—'कहाँ जा रहे हो, बेटा ?'

हरलाल ने कहा—'अधरबाबू के मकान पर।'

माँ की छाती पर से अचानक, अज्ञात भय का एक भारी बोझ उतर गया। उन्होंने समझ लिया कि यह जो हरलाल ने कल सुना है कि वेणु के पिता का विवाह हो रहा है, तभी से लड़के के मन में शान्ति नहीं है। अहा, वेणु को कितना प्यार करता है !

माँ ने जिज्ञासा की—'तो क्या आज तुम्हारा गाँव में जाना नहीं होगा ?'

हरलाल—'नहीं !' कहकर झटपट बाहर निकल पड़ा।

अधरबाबू के मकान पर पहुँचने से पहले ही दूर से सुनाई दिया, 'रसन चौकी[1] आलेया[2] रागिनी में करुण स्वर का आलाप मिला रही है; परन्तु हरलाल ने दरवाजे में घुसते ही देखा, विवाह के मकान के उत्सव के साथ, जैसे एक अशान्ति का लक्षण भी मिल गया है। दरवानों का पहरा कड़ा है, मकान में से नौकर-चाकर कोई भी बाहर नहीं निकल पा रहा है—सभी के मुख पर भय और

---

१. एक प्रकार का वाद्ययन्त्र।
२. दलदल में स्वयं उत्पन्न होने वाला जगमगाता हुआ प्रकाश।

चिन्ता का भाव है। हरलाल को खबर मिली, कल रात को मकान से हजारों रुपयों के गहने चोरी हो गये हैं। दो-तीन नौकरों पर विशेष रूप से सन्देह करके, पुलिस को सौंप देने की तैयारी हो रही है।

हरलाल ने दूसरी मंजिल के बरामदे मे जाकर देखा, अधरबाबू आग बने बैठे हैं और रतिकान्त तम्बाकू पी रहा है। हरलाल ने कहा—'आप के साथ, एकान्त में मुझे एक बात करनी है।'

अधरबाबू ने चिढ़ते हुए कहा—'तुम्हारे साथ एकान्त में बतियाने का इस समय मुझे वक्त नही है—जो बात है, इसी जगह कह डालो!'

उन्होंने सोचा था, हरलाल शायद इस समय उससे सहायता अथवा उधार माँगने आया है। रतिकान्त ने कहा—'मेरे सामने बाबू को कुछ बताने मे यदि लज्जा हो, तो मैं न हो, उठ जाऊँ!'

अधर ने उपेक्षा से कहा—'ओह, बैठो-न।'

हरलाल ने कहा—'कल रात मे वेणु मेरे मकान पर यह बैग रख गया है।'

अधर—'बैग में क्या है?'

हरलाल ने बैग खोलकर अधरबाबू के हाथ में दे दिया।

अधर—'मास्टर और छात्र ने मिलकर अच्छा कारबार खोल रखा है!' जानते होंगे कि इस चोरी के माल को बेचने पर पकड़े जरूर जाते, इसलिए ले आये हो—सोच रहे होंगे, सज्जनता के लिए बख्शीश मिलेगी?'

हरलाल ने अधर का पत्र उनके हाथ मे दे दिया। पढ़कर वे लाल हो उठे। बोले—'मैं पुलिस मे खबर दूंगा। मेरा लडका अभी तक बालिग नहीं हुआ है—तुमने उसे चोरी से विलायत भेज दिया है। शायद पाँच सौ रुपये उधार देकर, तीन हजार रुपये लिखवा लिये है। इस उधार को मैं नही चुकाऊँगा!'

हरलाल ने कहा—'मैंने उधार नहीं दिया है।'

अधर ने कहा—'तो उसने रुपये पाये कहाँ से? तुम्हारा बक्स तोडकर चोरी की थी?'

हरलाल ने इस प्रश्न का कोई उत्तर नही दिया। रतिकान्त ने इशारा करके कहा—'हमसे पूछिए-न, तीन हजार रुपये क्यो, पाँच सौ रुपये भी इन्होंने कभी आँखो से देखे है?'

जो भी हो, गहनों की चोरी की चिल्ल-पों के बाद अब वेणु के विलायत भाग

जाने को लेकर मकान में एक कोलाहल मच गया। हरलाल सभी अपराधों का भार अपने सिर पर लेकर, मकान से बाहर निकल आया।

सड़क पर जब बाहर निकला, उस समय उसका मन जैसे चेतनाशून्य हो गया था। भय एवं चिन्ता करने की शक्ति भी उस समय नही थी। इस मामले का परिणाम क्या हो सकता है, मन ने उसकी चिन्ता भी नहीं करनी चाही।

गली मे प्रवेश करते ही देखा, उसके मकान के सामने एक गाड़ी खड़ी हुई है। चौंक उठा। हठात् आशा हुई, शायद वेणु लौटा आया है। निश्चय ही वेणु है! उसकी विपत्ति बिल्कुल निरुपाय-रूप से, अन्तिम छोर पर जा पहुँचेगी। इस बात पर वह किसी तरह भी विश्वास नही कर सका।

झटपट गाड़ी के पास आकर देखा, उसके ऑफिस के एक साहब बैठे हुए हैं। साहब ने हरलाल को देखते ही गाड़ी से उतरकर, उसका हाथ पकड़कर मकान में प्रवेश किया और जिज्ञासा की—'आज गाँव क्यों नही गये ?'

ऑफिस के दरबान ने सन्देह करके, बड़े साहब को जाकर बता दिया था—उन्होंने ही इन्हें भेजा था।

हरलाल बोला—'तीन हजार रुपये के नोट नही मिल रहे हैं।'

साहब ने जिज्ञासा की—'कहाँ गये ?'

हरलाल—'नही जानता' यह भी नही कह सका, चुप रह गया।

साहब ने कहा—'रुपये कहाँ हैं, चलो देखें !'

हरलाल उन्हें ऊपर के कमरे मे ले गया। साहब ने सब को गिनकर, चारों ओर ढूंढ-ढाँढ़कर देखा। मकान के सभी कमरों की छानवीन और तलाशी वे लेने लगे। यह सब मामला देखकर माँ और नहीं ठहर सकी—उन्होंने साहब के सामने ही बाहर निकलकर, व्याकुल होते हुए जिज्ञासा की—'अरे हरलाल, क्या हुआ है रे ?'

हरलाल ने कहा—'माँ, रुपये चोरी हो गये हैं !'

माँ ने कहा—चोरी कैसे जाएँगे। हरलाल, ऐसा सर्वनाश किसने किया ?'

हरलाल ने कहा—'माँ चुप रहो !'

खोजबीन समाप्त करके साहब ने जिज्ञासा की—'इस घर में रात को कौन था ?'

हरलाल ने कहा—'द्वार बन्द करके मैं अकेला ही सोया था—और कोई नहीं था !'

साहब ने रुपयों को गाड़ी में रखकर हरलाल से कहा—'अच्छा, बड़े साहब के पास चलो।'

हरलाल को साहब के साथ जाते हुए देखकर, माँ ने उनका रास्ता रोकते हुए कहा—'साहब, मेरे लड़के को कहाँ ले जाओगे ? मैंने बिना खाये हुए इस लड़के को बड़ा किया है—मेरा लड़का कभी भी पराये रुपयों को हाथ नहीं लगाएगा !'

साहब ने बांग्ला भाषा मे कही बात को कुछ समझे बिना ही कहा—'आच्छा, आच्छा !'

हरलाल ने कहा—'माँ तुम क्यों घबरा रही हो। बड़े साहब से मिलकर मैं अभी आता हूँ।'

माँ ने उद्विग्न होकर कहा—'तूने सुबह से कुछ खाया भी तो नही है।'

इस बात का कोई उत्तर दिये बिना, हरलाल गाड़ी मे बैठकर चला गया। माँ फर्श पर लोटती हुई पड़ी रही।

बड़े साहब ने हरलाल से कहा—'सच बताओ कि मामला क्या है ?'

हरलाल ने कहा—'मैंने रुपये नही लिये हैं !'

बड़े साहब—'इस बात पर मैं पूर्णरूप से विश्वास करता हूँ ! परन्तु तुम अवश्य जानते हो कि किसने लिये हैं !'

साहब—'तुम्हारी जानकारी मे ये रुपये किसी ने लिये हैं ?'

हरलाल ने कहा—'मेरे प्राण रहते, मेरी जानकारी मे यह रुपये कोई नही ले सकता था।'

बड़े साहब ने कहा—'देखो हरलाल, मैंने तुम पर विश्वास करके कोई जमानतदार लिये बिना, यह जिम्मेदारी का काम तुम्हे दिया था। ऑफिस के सभी लोग विरोधी थे। तीन हजार रुपये कुछ अधिक नही है। परन्तु तुम मुझे बड़ी लज्जा मे डाल दोगे। आज सारे दिन का तुम्हें समय देता हूँ—जैसे भी कर सको, रुपये इकट्ठे कर लाओ—ऐसा हो जाने पर मामले में कोई बात नही उठाऊँगा ! तुम जिस तरह काम करते रहे हो, उसी तरह करते रहोगे !'

यह कहकर साहब उठ गये। उस समय ग्यारह बज गये थे। हरलाल जब

माथा नीचा किये हुए बाहर निकल गया, तो ऑफिस के बाबू लोग अत्यन्त प्रसन्न होकर, हरलाल के पतन को लेकर चर्चा करने लगे।

हरलाल को एक दिन का समय मिला। और भी एक लम्बा दिन, नैराश्य के पङ्क में आलोड़न करने की मीयाद बढ़ गयी।

उपाय क्या है, उपाय क्या है, उपाय क्या है—यही सोचते-सोचते उस धूप में हरलाल सड़क पर घूमने लगा। अन्त में, उपाय है या नहीं—यह सोचना बन्द हो गया; परन्तु बिना कारण के सड़क पर घूमते फिरना नहीं रुका। जो कलकत्ता हजार-हजार लोगों का आश्रय-स्थान है, वही एक क्षण में हरलाल के लिए एक प्रकाण्ड फांसी-घर जैसा हो उठा। इसमें से किसी ओर बाहर निकलने का कोई रास्ता नहीं है। समस्त जन-समाज इस अति क्षुद्र हरलाल को चारों ओर से घेरे हुए खड़ा है। कोई उसे जानता भी नहीं और उसके प्रति किसी के मन में कोई विद्वेष भी नहीं है; परन्तु हर व्यक्ति उसका शत्रु है। रास्ते के लोग उसके शरीर से रगड़कर, उसकी बगल में होकर चल रहे हैं; ऑफिस के बाबू लोग बाहर आकर दोने में भरकर पानी पी रहे हैं मगर उसकी ओर कोई देख भी नहीं रहा है। मैदान के किनारे अलस पथिक, माथे के नीचे हाथ रखकर, एक पांव के ऊपर दूसरा पांव रखकर पेड़ के नीचे लेटे हुए हैं। बैलगाड़ी में भरी हुई हिन्दुस्तानी स्त्रियाँ कालीघाट को जा रही है। एक चपरासी चिट्ठी लिये हुए, हरलाल के सामने रखता हुआ बोला—'बाबू, जरा पता पढ दीजिए'—जैसे उसमे और अन्य पथिकों में कोई अन्तर ही नहीं है। उसने भी पता पढकर उसे समझा दिया। क्रमशः ऑफिस बन्द होने का समय आ गया। घर की ओर जाने वाली गाड़ियाँ ऑफिस वाले मकानों से, अलग-अलग रास्तों पर होकर दौड़ती हुई बाहर निकलने लगी। ऑफिस के बाबू लोग ट्राम में भरकर, थियेटरों के विज्ञापन पढते-पढते घर को लौट चले। आज से हरलाल का ऑफिस नहीं है, ऑफिस की छुट्टी नहीं है, घर लौटने के लिए ट्राम पकड़ने की कोई जल्दी नहीं है। शहर के सब काम-काज घर-मकान, गाड़ियाँ, आना-जाना हरलाल के लिए कभी अत्यन्त उत्कट सत्य की भाँति दाँत पीसकर उठते थे, और कभी एकदम वस्तुहीन स्वप्न की भाँति छाया बन जाते थे। भोजन नहीं, विश्राम नहीं, आश्रय नहीं; किस तरह हरलाल का दिन कट गया, वह जान भी नहीं पाया। सड़क-सड़क पर गैस की बत्तियाँ जल गयीं—जैसे एक सतर्क अन्धकार, दसों दिशाओं में अपने सहस्रों क्रूर नेत्र गड़ाकर,

शिकार-लुब्ध दानव की भाँति चुपचाप दुबका हुआ हो। रात कितनी हो गयी, इस बात की हरलाल ने चिन्ता भी नही की। उसके कपाल की शिराएँ दब-दब कर रही थी; सिर जैसे फटा जा रहा था; सारे शरीर में आग जल रही थी; पाँव और नही चल पा रहे थे। सारे दिन कभी वेदना की उत्तेजना और कभी अवसाद की जडता के बीच केवल माँ की बात ही मन में उमड़-घुमड़ कर रही थी—कलकत्ते के असख्य जन-समुदाय में केवल यही एकमात्र नाम ही उसके शुष्क कण्ठ को भेद कर मुँह से निकल रहा था—माँ, माँ, माँ! और कोई पुकारने को नही है। मन मे सोचा, रात जब घनी हो जाएगी, कोई भी आदमी जब इस अति तुच्छ हरलाल को बिना अपराध के अपमानित करने के लिए जगता नहीं रहेगा, उस समय वह चुपचाप अपनी माँ की गोद में जाकर सो जाएगा—उसके बाद नींद चाहे फिर कभी न टूटे! बाद मे उसकी माँ के सामने पुलिस के आदमी अथवा और कोई उसका अपमान करने आएगा, इसी भय से वह घर नहीं जा पा रहा था। शरीर का बोझ जब और नही ढो सका, तो हरलाल ने एक किराये की गाड़ी को देखकर उसे पुकारा। गाडीवान ने जिज्ञासा की—'कहाँ जाएँगे?'

हरलाल ने कहा—'कहीं भी नही। इस मैदान की सड़क पर ही कुछ देर हवा खाता हुआ घूमूँगा।'

गाडीवान के सन्देह करके चले जाने का उपक्रम करते ही हरलाल ने उसके हाथ पर एडवान्स किराया, एक रुपया दे दिया। गाड़ी हरलाल को लेकर मैदान की सड़क पर चक्कर काटती हुई घूमने लगी।

दिन भर के थके हुए हरलाल ने अपने गर्म मस्तक को खुली हुई खिड़की पर रखकर आँखें बन्द कर ली। थोड़ी-थोड़ी करके उसकी समस्त वेदना जैसे दूर हो चली। शरीर शीतल हो गया। मन के भीतर एक सुगम्भीर, सुनिविड़, आनन्द-पूर्ण शान्ति घनीभूत होकर छाने लगी। जैसे एक परम मुक्ति ने उसे चारों ओर से घेर लिया। उसने जो दिन भर सोचा था, कहीं भी उसका कोई रास्ता नहीं है, सहायक नही है, छुटकारा नही है, उसके अपमान का अन्त नही है, दुःख की अवधि नही है, वह बात जैसे एक क्षण में ही मिथ्या हो गयी। अब मन को लगा, वह तो एक भय मात्र था, वह सत्य तो नही था, जिसने उसके जीवन को लोहे की मुट्ठी मे बन्द करके पीस रखा था, हरलाल ने उसे फिर तनिक भी स्वीकार नहीं किया—मुक्ति अनन्त आकाश को पूर्ण किये हुए है, शान्ति की कही भी सीमा

नही है। इस अति छुद्र हरलाल की वेदना के भीतर, अपमान के भीतर, अन्याय के भीतर, वन्दी बनाकर रख सके, ऐसी शक्ति विश्व-ब्रह्माण्ड के किसी राजा-महाराजा में भी नही है। जिस आतंक मे उसने स्वय को स्वय ही बाँध रखा था, वह सब खुल गया। उस समय हरलाल अपने वन्धन-मुक्त हृदय मे अनुभव करने लगा, जैसे उसकी वह दरिद्र माँ देखते-देखते घर-घर में विराट् रूप से समस्त अन्धकार को एकत्र करके बैठी हैं। उन्हें कहीं भी नही पकड़ा जा सकता। कलकत्ते के रास्ता-घाट, घर-मकान, दुकान-बाजार, सब एक-एक करके, उनके भीतर आच्छन्न होकर लुप्त होते चले जा रहे है—हवा भर गयी, आकाश भर गया, एक-एक करके नक्षत्र उनके भीतर मिल गये—हरलाल के शरीर-मन की समस्त वेदना, चिन्ता, समस्त चेतना, उनके भीतर थोड़ी-थोड़ी करके नि.शेष हो गयी—यह गया, तप्त वाष्प का बुद् बुद् एकदम फूट गया—अब और अँधेरा भी नही है, उजाला भी नही है, रह गयी है केवल एक प्रगाढ़ परिपूर्णता।

गिर्जे की घड़ी मे एक बजा। गाड़ीवान ने अँधेरे मैदान के भीतर गाड़ी हाँकते घूमते-घूमते अन्त मे विरक्त होकर कहा—'बाबू, घोड़ा तो और नही चल पा रहा है—कहाँ जाना होगा, कहिए!'

कोई उत्तर नही आया। कोच-बॉक्स से उतरकर हरलाल को हिलाते हुए उसने फिर जिज्ञासा की। मगर कोई उत्तर नही। तब डरकर गाड़ीवान ने परीक्षा करके देखा, हरलाल का शरीर चेतना-शून्य है, उसका श्वांस भी नहीं चल रहा है।

'कहाँ जाना होगा ?'—हरलाल के पास से इस प्रश्न का फिर कोई उत्तर नही पाया जा सका।

●

कर्मफल

१

आज सतीश की मौसी सुकुमारी एवं मौसा शशधर बाबू आये हैं—सतीश की माँ विधुमुखी अस्त-व्यस्त भाव से उनकी अभ्यर्थना में नियुक्त है—'आओ दीदी, बैठो! आज किस पुण्य से राय महाशय के दर्शन हुए हैं!—दीदी के आये बिना तो तुम्हारे दर्शन पाने का उपाय ही नहीं था।'

शशधर—इसीसे समझ लो कि तुम्हारी दीदी का शासन कैसा कड़ा है! दिन-रात आँखों-ही-आँखों में रखती हैं!

सुकुमारी—सो तो है ही, ऐसा रत्न घर में रहते हुए निश्चिन्त मन से सोया नहीं जा सकता!

विधुमुखी—नाक बजने के शब्द से···

सुकुमारी—सतीश, छि छिः, तू ये क्या कपड़े पहने है। तू क्या इसी तरह धोती पहनकर स्कूल जाता है? विधु, इसे जो कमीज खरीद दिया था, उसका क्या हुआ?

विधुमुखी—वह तो इसने कब का फाड़ फेंका है।

सुकुमारी—वह फटेगा तो सही! लड़के के शरीर पर एक कपड़ा कितने दिन टिकता है। तो, क्या इसी कारण और नया कमीज तैयार नहीं कराया? तुम

लोगों के घर में, हर वस्तु का अभाव है।

विधुमुखी—जानती तो हो दीदी, वे लड़के के शरीर पर सभ्य लोगों जैसे कपड़े देखते ही आग हो उठते है। मैं यदि न रहती तो शायद लड़के के शरीर पर दुपट्टा डालकर, कमर में लँगोटी पहनाकर स्कूल भेजते—अरी मैया ! ऐसी दुनिया से अलग पसन्द भी किसी की नही देखी !

सुकुमारी—झूठ नही है ! कोई अधिक लड़के भी तो नही है—इस अकेले को सजाने-पहनाने की इच्छा भी नही करते ? ऐसा बाप भी तो नही देखा ! सतीश, परसों रविवार है, तू हमारे घर आ जाना, मैं तेरे लिए एक सूट का कपड़ा, रैंमजे के यहाँ से मँगवाकर रख लूंगी। अहा, बच्चो को क्या-क्या शौक नही होता है।

सतीश—एक सूट से मेरा क्या होगा, मौसी ! भादुड़ी साहब का लड़का मेरे साथ ही पढता है, उसने मुझे अपने मकान मे पिंगपौंग खेलने के लिए आमन्त्रित किया है—मेरे पास तो उस तरह के, बाहर जाने योग्य मखमल के कपड़े नहीं हैं।

शशधर—ऐसी जगह के निमन्त्रण में न जाना ही अच्छा है, सतीश !

सुकुमारी—अच्छा, अच्छा, तुम्हे और भाषण नही देना पड़ेगा ! उसकी जब तुम्हारे बराबर आयु हो जाएगी, उस समय···

शशधर—उस समय उसे भाषण देने के लिए और लोग होंगे, बूढी मौसी का परामर्श सुनने का अवसर नही होगा !

सुकुमारी—अच्छा महाशय, भाषण देने के लिए अन्य लोग यदि तुम लोगो के भाग्य में न जुटते, तो तुम लोगों की क्या दशा होती, बताओ तो सही ?

शशधर—उस बात को कहने से लाभ क्या है ! उस हालत की कल्पना करना ही अच्छा है।

सतीश (नेपथ्य की ओर देखकर)—नही, नही, यहाँ नही लाना होगा, मैं आ रहा हूँ।

(प्रस्थान)

सुकुमारी—सतीश घबराकर भाग क्यों गया, विधु ?

विधुमुखी—थाली मे रखकर उसका नाश्ता लायी थी न, लड़के को इसीलिए तुम लोगों के सामने लज्जा आ गयी।

सुकुमारी—अहा, बेचारे को लाज भी आ सकती है ! ओ सतीश, सुन, सुन,

तेरे मौसाजी तुझे पाल बाबू की आइसक्रीम खिला लाएँगे; तू उनके साथ जा! अजी, जाओ न, बच्चे को जरा···

सतीश—मौसी, वहाँ क्या कपड़े पहनकर जाऊँ?

विधुमुखी—क्यों, तेरे पास तो अचकन है।

सतीश—वह खराब है।

सुकुमारी—और कुछ भी हो विधु, तेरे लड़के के भाग्य को पैतृक-पसन्द नहीं मिली, यही रक्षा की बात है। वास्तव में अचकन देखते ही खानसामा अथवा नाटक मण्डली का लड़का-सा लगता है। ऐसा असभ्य ढंग का कपड़ा कोई नहीं होगा।

शशधर—ये बातें···

सुकुमारी—धीरे-धीरे कहनी होगी? क्यों, डरना किससे है? मन्मथ अपनी पसन्द से लड़के को सजाएगा और हम लोग बात भी नहीं कर सकते?

शशधर—सर्वनाश! बात बन्द करने के लिए मैंने नहीं कहा। परन्तु सतीश के सामने ही यह सब आलोचना—

सुकुमारी—अच्छा-अच्छा, ठीक है! तुम उसे पाल बाबू के यहाँ ले जाओ।

सतीश—नहीं मौसी, मैं वहाँ अचकन पहनकर नहीं जा सकूँगा।

सुकुमारी—यह लो, मन्मथ बाबू आ रहे हैं। अभी सतीश के बारे में बक-बक करके उसे परेशान कर डालेंगे। बच्चा है, बाप की बकवास की चोट से उसे पल भर की शान्ति नहीं मिलेगी। आ सतीश, तू मेरे साथ आ—हम लोग भाग चलें।

(सुकुमारी का प्रस्थान। मन्मथ का प्रवेश)

विधु—सतीश 'घड़ी-घड़ी' करके कितने दिनों से मुझे परेशान किये हुए था। दीदी ने उसे एक चाँदी की घड़ी दी है—मैं पहले से कहे देती हूँ, तुम बाद में सुनकर नाराज होओगे!

(विधुमुखी का प्रस्थान)

मन्मथ—पहले से कह रखने पर भी नाराज होऊँगा! शशधर, वह घड़ी तुम्हें ले जानी होगी!

शशधर—तुम तो अच्छे आदमी हो! ले तो जाऊँगा, मगर फिर घर जाकर जवाबदेही कौन करेगा?

मन्मथ—नहीं शशधर, भाजक नहीं, मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता!

शशधर—अच्छा न लगे, परन्तु सहन तो करना ही पड़ता है—संसार में यह केवल तुम्हारे अकेले के लिए ही विधान नहीं है!

मन्मथ—मेरे अपने बारे में होने पर मैं चुपचाप सहन कर लेता। परन्तु लड़के को मैं मिट्टी नहीं कर पाऊँगा। जो लड़का चबैना मात्र ही पाता है; चबैने से पहले ही जिसका अभाव-मोचन हो जाता है, वह नितान्त अभागा है। इच्छा का दमन करना सीखे बिना, कोई कभी सुखी नहीं हो सकता। किसी चीज से वंचित होने पर भी धैर्य की रक्षा करने वाली जो विद्या है, मैं लड़के को वही देना चाहता हूँ, घड़ी और घड़ी की चेन नहीं जुटाना चाहता।

शशधर—यह तो अच्छी बात है, परन्तु तुम्हारी इच्छा मात्र से ही तो संसार की सब बाधाएँ उसी समय धूलिसात् नहीं हो जाएँगी। सभी में यदि तुम जैसी सद्बुद्धि होती, तब तो कोई बात नहीं थी; वह जब तक नहीं है, तब तक इस पवित्र-संकल्प को भी जबर्दस्ती निभाया नहीं जा सकता। धैर्य रखना चाहिए! स्त्रियों की इच्छा के एकदम विपरीत चलने का प्रयत्न करने पर अनेक मुसीबतों में पड़ जाओगे—इसकी अपेक्षा जरा बचकर निकल जाने से, सुविधा-जनक फल मिल सकता है। हवा जब उल्टी बहती है, जहाज का पाल उस समय तिरछा करके बाँधना पड़ता है; अन्यथा चलना असम्भव हो जाता है!

मन्मथ—इसीलिए शायद तुम गृहिणी की सब बातों पर सहमति देकर चलते हो। कायर!

शशधर—तुम्हारे जैसा बेमतलब का साहस मुझमें नहीं है। जिसकी घर-गृहस्थी के अधीन चौबीसों घण्टे रहना पड़ता है, उससे भय नहीं करूँगा तो किससे करूँगा? अपनी पत्नी से वीरता दिखाने में लाभ क्या है! चोट पहुँचाने में भी कष्ट है, चोट खाने में भी कष्ट है। इसकी अपेक्षा, तर्क के समय गृहिणी की बुद्धि को पूर्णरूप से अकाट्य कहकर स्वीकार करके, काम के समय अपने मत को चलाना ही श्रेष्ठ तरीका···

मन्मथ—जीवन यदि खूब लम्बा होता तो धैर्य से सुस्ताते हुए तुम्हारे मता-नुसार चला जा सकता था, परन्तु आयु जो थोड़ी है!

शशधर—इसीलिए तो भाई, विचार करके चलना पड़ता है! सामने एक पत्थर पड़ा होने पर जो लोग घूमकर नहीं चलते, वे उसे लाँघकर मार्ग को संक्षिप्त

करना चाहते है; विलम्ब उन्ही के भाग्य मे रहता है। परन्तु तुम से तो यह सब कहना व्यर्थ है—प्रतिदिन ही तो ठोकर खाते हो, फिर भी जब शिक्षा नही पाते हो, तो फिर मेरे उपदेश का कोई लाभ नही है। तुम इस तरह से चलना चाहते हो, जैसे तुम्हारी स्त्री नामक एक शक्ति का कोई अस्तित्व ही नही है—हालाँकि वे है, इस सम्बन्ध मे तुम्हें लेशमात्र सन्देह रहने का कोई कारण दिखाई नही देता।

२

दाम्पत्य कलहे चैव बह्वारम्भे लघुक्रिया—शास्त्र मे ऐसा ही लिखा है। परन्तु दम्पति-विशेष में इसका उल्टा हो जाता है,' जानकार व्यक्ति इसे अस्वीकार नही करते !

मन्मथ बाबू के साथ उनकी पत्नी का बीच-बीच में वाद-प्रतिवाद होता रहता था। वह अवश्य ही कलह था, फिर भी, उसके आरम्भ मे भी 'वहु' नही था, उसकी 'क्रिया' भी 'लघु' नही थी—ठीक बकरों की लड़ाई के साथ उसकी तुलना नही की जा सकती।

कुछ उदाहरणों द्वारा यह बात प्रमाणित हो जाएगी।

मन्मथ बाबू ने कहा—'अपने लड़के को जो विलायती पोशाक पहनाना शुरू कर दिया है, यह मुझे पसन्द नही है !'

विधु ने कहा—'पसन्द शायद अकेले तुम्हारी ही है ! आजकल तो सभी के लडको ने अँग्रेजी कपड़े अपना लिये है।'

मन्मथ ने हँसकर कहा—'सभी की तरह यदि चलोगी, तो सबको छोड़कर केवल मुझसे ही विवाह क्यो किया ?'

विधु—तुम यदि केवल अपनी ही राय से चलोगे, तो अकेले न रहकर, मुझसे ही तुम्हे विवाह करने की क्या आवश्यकता थी ?

मन्मथ—अपनी राय के अनुमार चलाने के लिए भी अन्य लोगों की आवश्यकता होती है।

विधु—अपने बोझ को ढुलवाने के लिए, धोबी को आवश्यकता होती है गधे की, परन्तु मैं तो और···

मन्मथ—(जीभ काटकर) अरे राम राम, तुम तो मेरी गृहस्थी रूपी मरुभूमि की अरबी घोड़ी हो। परन्तु वह प्राणी-शास्त्र का तर्क इस समय रहने दो। अपने लड़के को साहब मत बना बैठो!

विधु—क्यों नहीं बनाऊँ, उसे क्या किसान बना दूं?

यह कहकर विधु कमरे से बाहर हो गयी।

विधु की विधवा जेठानी ने बगल के कमरे में बैठे हुए, दीर्घ नि.श्वास छोड़कर मन में सोचा, पति-पत्नी में एकान्त का प्रेमालाप हो गया।

३

मन्मथ—वह क्या है जी, अपने लड़के को क्या लगा दिया है?

विधु—मूर्छित मत हो जाना, भयानक कुछ नहीं है, थोड़ा-सा सेन्ट मात्र है। वह भी विलायती नहीं है—तुम्हारी पसन्द का, देसी है!

मन्मथ—मैंने तुम से बार-बार कहा है; लड़कों को तुम इन सब शौकीनी की चीजों की आदत नहीं डाल सकोगी।

विधु—अच्छा, यदि तुम्हें आराम अनुभव होता है, तो कल से केरोसिन और कैस्टर-ऑयल लगा दिया करूँगी।

मन्मथ—वह भी व्यर्थ का खर्च ही होगा। जिसके न होने से भी काम चल सकता है, उसकी आदत न डालना ही अच्छा है; केरोसिन या कैस्टर ऑयल शरीर या सिर पर लगाना, मेरा राय में अनावश्यक है।

विधु—तुम्हारी राय में आवश्यक वस्तुएँ कितनी हैं, सो तो पता नहीं। पहले से ही मुझे शायद बाददे कर (उनका त्याग करके) रहना पड़ेगा।

मन्मथ—तुम्हें बाद कर देने(अलग कर देने से) वाद-प्रतिवाद एकदम ही बन्द हो जाएगा। इतने दिनों के दैनिक अभ्यास को एकदम छोड़ देना, शायद सहन नहीं होगा। जो भी हो, यह बात मैं तुमसे पहले ही कहे रखता हूँ, कि लड़के को तुम साहब बनाओ या नवाब बनाओ, या साहबी-नवाबी की खिचड़ी पकाओ; उसका खर्च मैं नहीं दूंगा। मेरी मृत्यु के बाद वह जो पाएगा, उससे उसके शौकों का खर्च पूरा नहीं होगा।

विधु—वह मैं जानती हूँ। तुम्हारे रुपयों पर भरोसा रखती तो लड़कों को कौपीन पहनाने का अभ्यास कराती है।

विधु के इस अवज्ञा-वाक्य से मर्माहत होकर भी, मन्मथ क्षण भर में ही सँभल गये; बोले—'मैं भी जानता हूँ कि अपने बहनोई शशधर पर ही तुम्हें इतना भरोसा है! उसके सन्तान नहीं है, इसीलिए निश्चित किये बैठी हो कि तुम्हारे लड़के को ही वे वसीयत में सब कुछ लिख-पढ जाएँगे। इसीलिए जब-तब लड़के को फिरंगी वेश में सजाकर, शरीर पर सुगन्ध मलकर, उसके मौसा का प्यार-दुलार पाने के लिए भेज देती हो। मैं दरिद्रता की लज्जा को आसानी से सहन कर सकता हूँ, परन्तु धनी कुटुम्व से सौभाग्य-याचना की लज्जा मुझसे सहन नहीं होती।'

यह बात मन्मथ के मन में बहुत दिनों से उठ रही थी, परन्तु बात कड़ी हो जाएगी, यह सोचकर ही अब तक कभी नहीं कही थी। विधु सोचती थी, पति उसके गूढ अभिप्राय को ठीक-ठीक नहीं समझ पाते हैं, कारण, पति-सम्प्रदाय स्त्री के मन की बातों के बारे में बिल्कुल मूर्ख होता है। परन्तु मन्मथ ने बैठे-ही-बैठे उसकी चाल पकड़ ली थी, आज अचानक ही यह जानकर विधु को मर्मान्तक कष्ट हो उठा।

मुँह लाल करके विधु ने कहा—'लड़के को मौसी के पास भेजना भी इनसे नहीं सहा जा सकता, इतने बड़े अभिमानी के घर में रहती हूँ, यह तो पहले कभी समझ ही नहीं सकी थी!'

इसी समय विधवा जेठानी ने प्रवेश करते हुए कहा—'छोटी बहू, तुम लोग धन्य हो! आज सत्रह वर्ष हो गये, फिर भी तुम लोगों की बातें समाप्त नहीं हुईं। रात में भी पूरी नहीं होती, तो फिर दिन में भी दोनों जने मिलकर फिस-फिस करते रहते हो। तुम लोगों की जीभ की नोंक पर विधाता इतना मधु दिन-रात कहाँ लगाते रहते हैं, मैं यही सोचती हूँ! नाराज मत होना देवर, तुम लोगों के मधुर आलाप में बाधा नहीं डालूंगी, एक बार केवल दो मिनट के लिए छोटी बहू के पास से सिलाई का पैटर्न देख लेने के लिए आयी हूँ।'

४

सतीश—ताई !

ताई—क्या है, बेटा ?

सतीश—आज भादुडी साहब के लडके को माँ चाय पिलाएँगी, तुम उस जगह अचानक मत जा पडना।

ताई—मुझे जाने की जरूरत क्या है, सतीश !

सतीश—यदि जाओ भी, तो तुम्हारे ये कपडे नही चलेंगे, तुम्हें···

ताई—सतीश, डरो नही, मैं इसी कमरे में रहूँगी ! जब तक तेरा मित्र चाय न पी जाएगा, मैं बाहर नही निकलूंगी।

सतीश—ताई, मैं सोचता हूँ कि तुम्हारे इस कमरे मे ही उसे चाय पिलाने का बन्दोबस्त करूँ। इस मकान में हम लोग जो ठसाठस भरे है कि चाय पीने, डिनर खाने योग्य कमरा एक भी खाली नही मिल पाता है। माँ के सोने के कमरे मे सन्दूक-फन्दूक न जाने क्या-क्या चीजें भरी है; उस जगह किसी को भी ले जाने में लज्जा आती है।

ताई—मेरी इस जगह में भी तो चीज-वस्त···

सतीश—उन सबको आज के लिए बाहर निकाल देना होगा। विशेषतः तुम्हारे यह हँसिया, डलिया, लकडी की थाली वगैरह कही छिपाकर रखे बिना काम नही चलेगा।

ताई—क्यों बेटा, इन सबके कारण लज्जा किस बात की है ? उन लोगों के मकान मे क्या तरकारी काटने का नियम नही है ?

सतीश—वह नही जानता ताई, परन्तु चाय पीने के कमरे मे इन सब को रखने का रिवाज नही है। इन्हें देखकर नरेन भादुड़ी अवश्य हँसेगा, घर जाकर अपनी बहनों से कहेगा।

ताई—सुनो तो सही, लड़के की बात तो सुनो ! हँसिया-टोकरी तो हमेशा घर में ही रहते है। उन्हें लेकर बातें करना तो कभी सुना ही नही है।

सतीश—तुम्हे और एक काम करना होगा ताई ! हमारे नन्दू को तुम, जैसे भी हो सके, यहाँ आने से रोके रखना, वह मेरी बात नही सुनेगा, नगे शरीर चट् से सबके बीच जा उपस्थित होगा।

ताई—उसे तो रोक लूँगी, परन्तु तेरे पिता जिस समय नगे शरीर···

सतीश—उनके लिए मैंने पहले से ही मौसी को जा पकड़ा है, उन्होंने पिताजी को आज पिठा[1] खाने का निमन्त्रण दिया है। पिताजी इस सबके बारे में कुछ भी नहीं जानते।

ताई—बेटा सतीश, जो मन में आये वह कर; परन्तु मेरे कमरे में तुम लोगों का यह खाना-पीना···

सतीश—सो अच्छी तरह से साफ कर दूंगा, तुरन्त ही !

५

सतीश—माँ, इस तरह से तो नहीं चलेगा।

विधु—क्यों, क्या हो गया ?

सतीश—चाँदनी[2] का कोट-पैंट पहनकर मुझे बाहर निकलने में लज्जा आती है। उस दिन भादुड़ी साहब के मकान में ईवनिंग-पार्टी थी; कुछ बाबूओं को छोड़कर और सभी लोग ड्रेस-सूट पहनकर गये थे, मैं उस जगह इन कपड़ों में जाकर भारी बेवकूफ बन गया। पिताजी कपड़ों के लिए जो थोड़े से रुपये देना चाहते हैं, उनसे भद्रता की रक्षा नहीं होती।

विधु—जानता तो है सतीश, वे जिसे पकड़ लेते हैं, उसे किसी तरह भी नहीं छोड़ते। कितने रुपये होने पर तेरे मन लायक पोशाक हो सकती है, सुनूं तो ?

सतीश—एक मॉर्निंग-सूट और एक लॉंग-सूट में एक सौ रुपये के आस-पास लगेगा। एक काम चलाऊ ईवनिंग-ड्रेस डेढ़ सौ रुपये से कम में किसी तरह भी नहीं बनेगी।

विधु—कहता क्या है, सतीश ! यह तो तीन सौ रुपये का धक्का है, इतने रुपये···?

सतीश—माँ, यही तुम लोगों में दोष है ! एकदम फकीर बना देना चाहो,

---

१. पिसे हुए चावल अथवा दाल, नारियल, छेना, खोया आदि मिलाकर बनायी गयी एक प्रकार की बंगाली मिठाई।

२. एक प्रकार की साधारण किस्म का कपड़ा।

तो ठीक है; और यदि भद्र समाज में मिलना है, तो इस तरह खींचतान करने से नही चलेगा। भद्रता की रक्षा करने के लिए तो खर्च करना ही होगा, उसका तो कोई उपाय ही नही है। सुन्दरवन में क्यों नही भेज देती हो, वहाँ ड्रेस-कोट की कोई आवश्यकता नहीं होगी।

विधु—सो तो जानती हूँ। परन्तु अच्छा, तेरे मौसा तो मुझे जन्म-दिन पर उपहार देते रहते है, इस बार के लिए एक निमन्त्रण की पोशाक उनसे बनवा ले न ! बातों-ही-बातों मे, अपनी मौसी को जरा-सा आभास देने से ही काम हो जाएगा।

सतीश—वह तो आसानी से कर सकता हूँ। परन्तु पिताजी को यदि पता चला कि मैंने मौसाजी से कपडा लिया, तो फिर रक्षा नहीं हो सकेगी।

विधु—अच्छा, उन्हें मैं सम्भाल लूंगी।

(सतीश का प्रस्थान)

—भादुडी साहब की लड़की के साथ यदि सतीश के विवाह का प्रबन्ध किसी तरह हो जाय, तो भी मैं सतीश के बारे में बहुत कुछ निश्चिन्त हो सकती हूँ। भादुड़ी साहब बैरिस्टर आदमी हैं। आराम से दस-बीस रुपये कमा लेते हैं। सतीश तो बचपन से ही उन लोगों के मकान में आता-जाता रहता है। लड़की भी तो पत्थर नही है, अवश्य ही मेरे सतीश को पसन्द करती होगी। सतीश के पिता तो इन सब बातों के बारे मे कुछ सोचते भी नहीं है; कहते ही आग हो उठते हैं। लड़के के भविष्य की बाबत मुझे ही सब सोचना पड़ता है।

६

[मिस्टर भादुड़ी के मकान का टेनिस मैदान]

नलिनी—कौन सतीश ? भाग कहाँ रहे हो ?

सतीश—तुम्हारे यहाँ टेनिस-पार्टी की बाबत जानता नही था; मैं टेनिस-सूट पहनकर नहीं आया हूँ।

नलिनी—सभी गायों का तो एक रग का चमड़ा नहीं होता ! तुम्हारा, न होगा, ओरिजिनल नाम ही पुकार लेंगे। अच्छा, मैं तुम्हारे लिए प्रबंध किये देती हूँ। मिस्टर नन्दी, आपसे मेरा एक अनुरोध है।

नन्दी—अनुरोध क्यों, हुक्म दीजिए न—मैं आपकी ही सेवा के लिए हूँ।

नलिनी—यदि एकदम असंभव न समझें, तो आज के लिए आप लोग सतीश को माफ कर दें—ये आज टेनिस-सूट पहनकर नहीं आये हैं। इतनी बड़ी शोचनीय दुर्घटना है!

नन्दी—आपके वकालत करने पर तो खून, षड्यन्त्र, आगजनी तक माफ कर सकता हूँ। टेनिस-सूट न पहन आने से यदि आपको इतनी चिन्ता होती है, तो अपना यह टेनिस-सूट मिस्टर सतीश को देकर, उनका यह—इसे क्या कहूँ? तुम्हारा यह कौन-सा सूट है, सतीश?—खिचड़ी सूट ही कह दिया जाए—तो मैं सतीश के इस खिचड़ी सूट को पहनकर रोज इस जगह आऊँगा। मेरी ओर यदि स्वर्ग के समस्त सूर्य, चन्द्र, तारागण अवाक् होकर ताकते रहें, तो भी लज्जा नहीं करूँगा। सतीश, इन कपड़ों को दान करने में यदि तुम्हें आपत्ति हो तो अपने दर्जी का पता मुझे दे दो। फैशनेबल कटिंग की अपेक्षा, मिस भादुड़ी की दया अधिक मूल्यवान है।

नलिनी—सुनो, सुनो सतीश, सुन रखो! केवल कपड़ों की काट-छाँट ही नहीं, मीठी बातों की बनावट भी तुम मिस्टर नन्दी से सीख सकते हो! ऐसा आदर्श व्यक्ति और नहीं मिलेगा। विलायत में इन्होंने ड्यूक, डचेज के अतिरिक्त और किसी के साथ बात भी नहीं की है। मिस्टर नन्दी, आप लोगों के समय में, विलायत में बंगाली छात्र कौन-कौन से थे?

नन्दी—मैं वहाँ बंगालियों के साथ मिलता-जुलता ही नहीं था।

नलिनी—सुनते हो, सतीश? बाकायदा सभ्य बनने के लिए कितनी सावधानी रखनी पड़ती है! तुम शायद प्रयत्न करने पर हो सकते हो। टेनिस-सूट के बारे में तुम्हारा जैसा सूक्ष्म धर्म-ज्ञान है, उससे आशा होती है।

(अन्यत्र गमन)

सतीश (दीर्घ निःश्वास छोड़कर)—नेली को मैं आज तक समझ ही नहीं सका! मुझे देखकर वह शायद मन-ही-मन हँसती है। मुझे भी मुश्किल हो गयी है, मैं किसी तरह भी यहाँ आकर स्वस्थ मन से नहीं रह पाता हूँ—केवल लगता है, मेरी टाई शायद कॉलर से ऊपर उठ गयी है, मेरी पैंट घुटनों के पास शायद सिकुड़ गयी है। नन्दी की तरह कब मैं भी खूब, इसी तरह, अनायास ही स्फूर्ति के साथ···

नलिनी (दुबारा आकर)—क्यों सतीश, अभी तक तुम्हारे मन का खेद मिटा नही ? टेनिस-सूट के शोक से तुम्हारा हृदय जैसे फट गया है ! हाय, सूट-विहीन हृदय के लिए संसार में कहा सान्त्वना है—दर्जी का मकान छोड़कर ?!

सतीश—मेरे हृदय की भावना यदि तुम जानतीं, तो ऐसी बातें नही कहती, नेली !

नलिनी (ताली बजाकर)—वाह-वाह ! मिस्टर नन्दी के उदाहरण से, मीठी बातों की आमदनी तुरंत शुरू हो गयी ! बढ़ावा पाकर, खूब उन्नति होने का भरोसा हो रहा है। आओ, एक केक खाया जाए, मीठी बात का पुरस्कार मिष्टान्न है।

सतीश—नही, आज और नही खाऊँगा। मेरा शरीर···

नलिनी—सतीश, मेरी बात सुनो—टेनिस-सूट के दु.ख से अपने शरीर को नष्ट मत करो ! खाना-पीना एकदम छोड़ देना अच्छा नही है ! सूट नामक वस्तु संसार में सबसे श्रेष्ठ वस्तु है, इसमे सन्देह नहीं है; परन्तु इस तुच्छ शरीर के न होने पर, उसे पहनकर घूमने की सुविधा नही हो सकती।

७

शशधर—देखो मन्मथ, सतीश पर तुमने बहुत कड़ा व्यवहार करना आरम्भ कर दिया है। अब वह बड़ा हो गया है, अब उसके प्रति इतना कड़ा शासन अच्छा नहीं है !

मन्मथ—दो आरोप एक ही साथ ? एक ने कहा निर्दय, और दूसरा कहता है निर्बोध ! जिनके पास हतबुद्धि होकर आया हूँ, उन्होंने जो कुछ कहा, उसे सहन करने को तैयार हूँ; परन्तु उसी के कारण उनके बहनोई तक सहिष्णुता नही चलेगी। मेरा व्यवहार कैसे कडा है, सुनूँ तो ?

शशधर—बेचारे सतीश को जरा कपडों का शौक है; उसने पाँच जगह मिलना-जुलना आरम्भ किया है; उसे तुम चाँदनी···

मन्मथ—मैंने तो चाँदनी के कपड़े पहनने को नहीं कहा ! फिरंगी पोशाक मेरी दोनों आँखों को विष है ! धोती, चादर, अचकन, चोगा पहने; कभी लज्जित नही होना पड़ेगा !

शशधर—देखो, मन्मथ ! सतीश यदि इस आयु में अपने शौक न मिटा पाएगा तो बूढ़ी आयु मे खामखाह क्या कर बैठेगा, वह और भी बुरा दिखाई देगा । और सोच देखो, जिसे हम लोगों ने बचपन से ही सभ्यता के रूप में सीखा है, उसका आक्रमण रुकेगा कैसे ?

मन्मथ—जो सभ्य बनेंगे, वे सभ्यता का माल-मसाला अपने ही खर्च से जुटाएँगे ! जहाँ से तुम्हारी सभ्यता आती है, रुपये तो वहाँ से आते नही; बल्कि इधर से ही उधर जाते है ।

विधु—राय महाशय, आप इनसे पार नही पा सकेंगे—जमाने भर की बात उठ जाने पर उन्हें रोका नही जा सकता ।

शशधर—*भाई मन्मथ, वह सब बातें मैं भी समझता हूँ* ! परन्तु, लड़कों की जिद से भी तो नही बचा जा सकता । सतीश भादुडी साहब से वह जब मिलता-जुलता है, तब उपयुक्त कपड़े न रहने से उस बेचारे की बड़ी मुश्किल हो जाती है। मैंने बैंकिन के यहाँ से उसके लिए···

(नौकर का प्रवेश)

नौकर—साहब के मकान से यह कपड़े आये हैं।

मन्मथ—ले जा कपड़ों को, ले जा ! फौरन ले जा ! (विधु से) देखो, सतीश को यदि मैं *ये कपड़े पहने देखूंगा, तो उसे घर में नही रहने दूंगा, मौसी के पास* भेज दूंगा; वहाँ वह अपनी इच्छानुसार चल सकेगा ।

(द्रुत प्रस्थान)

शशधर—अजीब बात है !

विधु (रोती हुई)—राय महाशय, तुमसे क्या कहूँ, मेरे जीवित रहने में कोई सुख नहीं है ! अपने लड़के के साथ पिता का ऐसा व्यवहार किसी ने नहीं देखा है ?

शशधर—मेरे प्रति व्यवहार भी तो ठीक नही हुआ ! लगता है मन्मथ के हाजमे मे खराबी आ गयी है । मेरा परामर्श सुनो, तुम उसे रोज वही एक दाल-भात खिलाती हो न ? वह कितना भी क्यों न कहे, बीच-बीच में मसालेदार रसोई न होने से मुंह को नही रुचता, हजम भी नही होता । कुछ दिन उसे अच्छी तरह खिलाकर भी देखो; उसके बाद तुम जो कहोगी, वही सुनेगा ! इस बारे में, तुम्हारी दीदी तुमसे कही अच्छा समझती हैं ।

(शशधर का प्रस्थान। विधुमुखी का रोना)

विधवा जेठानी (कमरे में प्रवेश करके स्वगत)—कभी रोना, कभी हँसना—कितनी तरह का सुहाग है, उसका ठिकाना ही नहीं—खूब है! (दीर्घ नि.श्वास) ओ छोटी बहू, कोप-भवन में बैठी है? देवर को बुलाए देती हूँ। मान-मनौवल का कार्यक्रम भी हो जाए।

८

नलिनी—सतीश, मैंने तुम्हें क्यों बुला भेजा है, जानते हो? लो कहती हूँ, नाराज मत होना।

सतीश—तुम्हारे बुलाये जाने पर नाराज होऊँ, मेरा मिजाज क्या इतना खराब है?

नलिनी—नहीं, ये सब बातें रहने दो! हर समय नन्दी साहब की चेलागीरी मत करो। बताओ तो सही, मेरे जन्म-दिवस पर तुमने इतनी कीमती वस्तु क्यों दी?

सतीश—जिसे दी है, उसकी तुलना में क्या वस्तु की कीमत उतनी ही अधिक है?

नलिनी—दुबारा फिर नन्दी की नकल!

सतीश—नन्दी की नकल जान-बूझकर ही करता हूँ। उसके प्रति जब व्यक्ति विशेष का पक्षपात…

नलिनी—तो जाओ, तुम्हारे साथ मैं बात नहीं करूँगी!

सतीश—अच्छा माफ करो, मैं चुप रहकर सुनूँगा।

नलिनी—देखो सतीश, मिस्टर नन्दी ने मुझे मूर्खों की भाँति एक कीमती ब्रेसलेट भेजा था। तुमने वैसे ही निर्बुद्धिता से, सुर में चढ़कर उससे भी अधिक मूल्यवान एक नेकलेस क्यों भेज दिया?

सतीश—जिस अवस्था में आदमी की विवेचना-शक्ति नहीं रहती, उस अवस्था को तुम जानती नहीं हो, इसीलिए तुम नाराज हो रही हो, नेली!

नलिनी—मुझे सात जन्म तक जानने की जरूरत नहीं है! परन्तु यह नेकलेस तुम्हें लौटा ले जाना पड़ेगा।

सतीश—लौटा देगी ?

नलिनी—लौटा दूंगी ! बहादुरी दिखाने के लिए जो दान किया गया हो, मेरे लिए उस दान का कोई मूल्य नहीं है !

सतीश—तुम अनुचित कह रही हो, नेली !

नलिनी—मैं कुछ भी अनुचित नहीं कह रही। तुम यदि मुझे एक फूल भेंट देते, तो मैं बहुत खुश होती ! तुमने जब-तब प्रायः ही बीच-बीच में मुझे कोई-न-कोई कीमती वस्तु भेजना आरम्भ कर दिया है। कहीं तुम्हारे मन को चोट न लगे, इसलिए मैंने इतने दिनों तक कुछ भी नहीं कहा। परन्तु क्रमशः मात्रा बढ़ती जा रही है, अब मेरा चुप बने रहना उचित नहीं है। यह लो अपना नेकलेस !

सतीश—इस नेकलस को तुम सड़क पर खींच कर मारो, परन्तु मैं किसी तरह भी वापस नहीं लूंगा।

नलिनी—अच्छा सतीश, तुम तो मुझे बचपन से ही जानते हो। मेरे साथ मजाक मत करना। सच बताओ, क्या तुमने रुपये उधार नहीं लिए है ?

सतीश—किसने तुमसे कहा ? नरेश ने शायद ?

नलिनी—किसी ने नहीं कहा ! मैं तुम्हारा मुंह देखकर समझ लेती हूँ। मेरे लिए तुम ऐसा अन्याय क्यों करते हो ?

सतीश—समय-विशेष पर, व्यक्ति-विशेष के लिए मनुष्य को प्राण तक दे देने की इच्छा होती है। आजकल प्राण देने का अवसर ढूँढे नहीं मिल पाता—अन्तत. उधार लेने का दुःख स्वीकार करने में जो सुख है, क्या उसका भी उपभोग नहीं करने दोगी ? मेरे लिए जो दुःसाध्य है, मैं तुम्हारे लिए वही करना चाहता हूँ, नेली ! इसको भी यदि तुम नन्दी साहब की नकल कहो, तो मेरे लिए वह मर्मान्तिक होगा।

नलिनी—अच्छा, तुम्हे जो करना था, वह कर दिया—तुम्हारे उस त्याग-स्वीकार को मैंने ले लिया—अब इस वस्तु को वापस ले लो !

सतीश—उसे यदि मुझे वापिस लेना पड़ा, तो इस नेकलेस से गले में फाँसी लगाकर दम घोट करके मरना मेरे लिए अच्छा है।

नलिनी—कर्ज को तुम किस तरह चुकाओगे ?

सतीश—माँ से रुपये ले लूंगा !

नलिनी—छि-छि ! वे सोचेंगी कि मेरे लिए ही उनके लडके पर कर्ज हो गया है।

सतीश—यह बात वे कभी नही सोचेंगी। अपने लड़के को वे बहुत दिनों से जानती है।

नलिनी—अच्छा, कुछ भी हो, तुम प्रतिज्ञा करो कि अब मे तुम मुझे कीमती वस्तु नही दोगे। बहुत अधिक हुआ, तो फूलों के गजरे से अधिक और कुछ नही दे सकोगे !

सतीश—अच्छा, यही प्रतिज्ञा कर ली !

नलिनी—चलो, तो अब अपने गुरु नन्दी साहब का पाठ दोहराओ। देखूं, चापलूसी करने की विद्या मे तुम कहां तक आगे बढ चुके हो ! अच्छा, मेरे कानो की नोक के बारे में तुम क्या कह सकते हो, कहो—मैंने तुम्हें पांच मिनट का समय दे दिया।

सतीश—जो कहूँगा, उससे यह नोक लाल हो उठेगी !

नलिनी—खूब, खूब ! भूमिका बुरी नही रही। आज के लिए इतना ही रहे, बाकी किसी और दिन होगा। अभी से कानों ने झां-झां करना शुरू कर दिया है।

६

विधु—मुझ पर नाराज होओ या कुछ भी होओ, लडके पर मत होओ ! तुम्हारे पांव पकडती हूँ, इस बार के लिए उसका कर्ज चुका दो !

मन्मथ—मैं नाराज नही हो रहा हूँ। मेरा जो कर्तव्य है, वह तो मुझे करना ही होगा ! मैंने सतीश से बार-बार कहा था, कर्ज कर लेने पर, चुकाने का भार मैं नही लूंगा। मेरी वह बात झूठ नहीं होगी !

विधु—अजी, इतने बड़े सत्य-प्रतिज्ञ युधिष्ठिर होने से गृहस्थी नहीं चलती ! सतीश अब वयस्क हो गया है। उसे जो हाथ-खर्च देते हो, उसमे उधार, किए बिना उसका काम चल कैसे सकता है ? बताओ तो सही !

मन्मथ—जिसे जितनी सामर्थ्य हो, उसकी अपेक्षा बड़ी चाल कर देने से किसी का काम नही चल सकता—फकीर का भी नहीं, बादशाह का भी नही !

विधु—तब क्या लड़के को जेल में जाना होगा ?

मन्मथ—वह यदि जाने की तैयारी करता है और तुम लोग यदि उसका प्रबन्ध करते हो, तो मैं रोककर रख कैसे सकता हूँ ?

(मन्मथ का प्रस्थान। शशधर का प्रवेश)

शशधर—मुझे इस मकान में देखते ही मन्मथ डर जाता है। सोचता है, काले कुर्ते की फर्माइश देने के लिए, फीता हाथ में लेकर उसके लड़के के शरीर का नाप लेने आया हूँ। इसीलिए कई दिन नहीं आया। आज तुम्हारी चिट्ठी पाकर, सुकू ने रो-धोकर मुझे घर से निकाल दिया है।

विधु—दीदी नहीं आयी ?

शशधर—वे अभी आएँगी। मामला क्या है ?

विधि—सभी तो सुना है ! अब लड़के को जेल भेजे बिना उनका मन लग नहीं रहा है। वैकिन-हार्मन की पोशाक उन्हें पसन्द नहीं आयी, जेल-खाने के कपड़े ही शायद उनके विचार मे अधिक सुसभ्य हैं।

शशधर—और कुछ भी कहो, मन्मथ को समझाने की कोशिश मुझ से नहीं हो सकेगी। उसकी बात मैं नहीं समझता, मेरी बात भी वह नहीं समझता, आखिरकार—

विधु—वह क्या है, सो मैं नहीं जानती। तुम लोग तो उनकी स्त्री नहीं हो, जो सिर झुकाकर सब कुछ सह लोगे ! परन्तु इस समय यह विपत्ति कैसे रुकेगी ?

शशधर—तुम्हारे हाथ में क्या कुछ···

विधु—कुछ भी नहीं है—सतीश का कर्ज चुकाने में, मेरे प्रायः सभी गहने गिरवी रख गये है, हाथ में केवल कगन बचे हैं।

(सतीश का प्रवेश)

शशधर—क्यों सतीश, सोच-समझकर खर्च नहीं करता है ? इस समय कैसी मुसीबत आ गयी है, दीख रहा है ?

सतीश—मुसीबत तो कुछ भी नहीं दीखती।

शशधर—तो हाथ में कुछ है, शायद ! छिपा मत !

सतीश—कुछ तो है ही !

शशधर—कितना ?

सतीश—अफीम खरीदने लायक !

विधु (*रोती हुई*)—सतीश, यह कैसी बात तू कह रहा है ? मैंने बहुत दुःख पाये है, मुझे और मत जला।

शशधर—*छि-छि: सतीश ! ऐसी बात यदि कभी मन में भी आए, तो क्या* माँ के सामने कही जाती है ? बडी अनुचित बात है !

(*सुकुमारी का प्रवेश*)

विधु—दीदी, सतीश को बचाओ। वह न जाने कब क्या कर बैठेगा; मैं तो भय से मरी जा रही हूँ ! वह जो कुछ कहता है, सुनकर मेरा शरीर कांप उठता है।

सुकुमारी—उसने फिर क्या कहा है ?

विधु—कह रहा है न, अफीम खरीद लाऊँगा !

सुकुमारी—क्या सर्वनाश है ! सतीश, मेरा शरीर छूकर कह, ऐसी बात मन मे भी नही लाएगा। चुप क्यों रह गया ? राजा बेटा मेरा ! अपनी माँ-मौसी की बात याद रखना !

सतीश—जेल मे बैठकर याद करते रहने की अपेक्षा, इन सब हास्यजनक मामलों को जेल से बाहर चुका डालना ही अच्छा है !

सुकुमारी—हम लोगों के रहते, तुझे जेल कौन ले जाएगा ?

सतीश—सिपाही !

सुकुमारी—*अच्छा देखूँगी, कितने बडे सिपाही हैं !* अजी इन रुपयों को फेंक दो न, बच्चे को क्यों कष्ट दे रहे हो ?

शशधर—रुपये तो फेंक सकता हूँ; परन्तु मन्मथ मेरे सिर मे ईंट फेंक कर न मार दे !

सतीश—मौसाजी, वह ईंट तुम्हारे सिर तक नही पहुँचेगी, मेरी गर्दन पर गिरेगी। एक तो इम्तहान में फेल हो गया, उसके ऊपर कर्ज; इस पर भी जेल जाने का इतना बड़ा सुयोग यदि मिट्टी हो जाए, तो पिताजी मेरे उस अपराध को माफ नही करेंगे !

विधु—सच है, दीदी ! सतीश ने मौसा के रुपये लिए हैं, सुनकर वे शायद उसे *मकान से बाहर निकाल देंगे !*

सुकुमारी—निकाल दें न ! और क्या कहीं मकान नही है ? ओ विधु,—

सतीश को तू मुझे दे दे न ! मेरे तो बाल बच्चे हैं नहीं, मैं न होगा, इसे ही पालूंगी। क्या कहती है ?

शशधर—यह तो अच्छा ही है ! परन्तु, सतीश तो बाघ का बच्चा है, उसे खींचने के लिए जाने पर, उसके मुँह से प्राण बचाना मुश्किल हो जाएगा।

सुकुमारी—राय महाशय ने तो बच्चे को जेल के सिपाहियों के हाथ में ही समर्पित कर दिया है; हम लोग यदि उसे बचा ले जाएँ, तो वे कोई बात नहीं कह सकेंगे।

शशधर—बाघिनी क्या कहती है, और बच्चा खुद क्या कहता है ?

सुकुमारी—जो कहते हैं, सो मैं जानती हूँ; उस बात को और पूछना नहीं पड़ेगा। तुम इसी समय कर्ज चुका दो !

विधु—दीदी !

सुकुमारी—अब दीदी-दीदी करके रोना नहीं पड़ेगा ! चल, तेरे केश बाँध दूं। इस तरह की शोभा बनाकर अपने बहनोई के सामने बाहर निकलने में तुझे लज्जा नहीं आती ?

(शशधर के अतिरिक्त सबका प्रस्थान। मन्मथ का प्रवेश)

शशधर—मन्मथ; भई, तुम जरा विचार करके तो देखो—

मन्मथ—विचार किये बिना मैं कुछ भी नहीं करता !

शशधर—तो दुहाई है तुम्हारी, विचार को जरा छोटा कर लो ! लड़के को क्या जेल में दोगे ? उससे क्या उसका भला होगा ?

मन्मथ—भले-बुरे की बात कोई भी अन्त तक सोच नहीं पाता है। मैं मोटे तौर पर यही समझता हूं कि बार-बार सावधान कर देने के बाद भी यदि कोई अनुचित काम करता है, तो उसके फल-भोग से, और उसकी कृत्रिम उपाय से रक्षा करना, किसी के लिए भी उचित नहीं होता। हम लोग यदि बीच में पड़कर व्यर्थ न कर देते, तो प्रकृति की कठोर शिक्षा से मनुष्य, यथार्थ मनुष्य हो सकता था।

शशधर—प्रकृति की कठोर शिक्षा ही यदि एकमात्र शिक्षा होती, तो विधाता माता-पिता के मन में स्नेह नहीं भरता ! मन्मथ, तुम जो दिन-रात कर्मफल-कर्मफल करते हो, मैं उसे पूर्णरूप से नहीं मानता ! प्रकृति हमारे पास से कर्मफल को कौड़ी-गण्डे के रूप में निकाल लेना चाहती है; परन्तु प्रकृति के

ऊपर जो करता है, वे बीच मे पडकर बहुत से अवरोध लगा देते हैं; अन्यथा कर्म-फल का ऋण चुकाते-चुकाते हम लोगों का अस्तित्व तब बिक जाता। विज्ञान के हिसाब से कर्मफल सत्य है; परन्तु विज्ञान के ऊपर भी एक विज्ञान है, जहां प्रेम के हिसाब से फलाफल सब दूसरी तरह का है। कर्मफल नैसर्गिक है, क्षमा तो उसके ऊपर की बात है!

मन्मथ—जो अनैसर्गिक मनुष्य हों, वे जो चाहें कर सकते हैं। मैं अत्यन्त सामान्य, नैसर्गिक हूँ, मैं कर्मफल तक ही मानता हूँ।

शशधर—अच्छा, मैं यदि सतीश का कर्ज चुकाकर उसे उऋण कर दूं, तो तुम क्या करोगे?

मन्मथ—मैं उसे त्याग दूंगा। देखो, सतीश को मैंने जिस भाव से बड़ा करना चाहा था, पहले से ही बाधा देकर, तुम लोगों ने उसे व्यर्थ कर दिया। एक ओर से सयम और दूसरी ओर प्रश्रय पाकर, वह एकदम नष्ट हो गया है। अब यदि भिक्षा पाकर ही उसे सम्मान महसूस हो, एव दायित्व-बोध खत्म हो जाय; जिस कार्य का जो परिणाम है, तुम लोग यदि बीच में पडकर किसी तरह भी उसे वह समझने न दो, तो उसकी आशा मैं त्याग देता हूँ। अपनी इच्छानुसार ही उसे बड़ा करो—दो नावों पर पाँव रखकर उसे मुसीबत उठानी पड़ रही है!

शशधर—यह क्या बात कह रहे हो, मन्मथ, तुम्हारा लड़का···

मन्मथ—देखो शशधर, अपने स्वभाव और विश्वास के अनुसार ही मैं अपने लड़के को मनुष्य बना सकता हूँ; अन्य कोई उपाय नही जानता! जब निश्चित रूप से देखता हूँ कि वह किसी तरह भी नही हो सकता, तब पिता का दायित्व मैं और नही रखूंगा। मेरी जितनी सामर्थ्य है, उससे अधिक मैं नही कर सकूंगा!

(मन्मथ का प्रस्थान)

शशधर—क्या किया जाय। लड़के को तो जेल मे नही दिया जा सकता। अपराध मनुष्य के लिए कितना ही सर्वनाशक हो, जेलखाना उससे भी बहुत अधिक है!

१०

मिसेज भादुड़ी—सुना है, सतीश के पिता अचानक मर गये!

मिस्टर भादुड़ी—हाँ, वह तो सुना है।

पत्नी—वे अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति अस्पताल को दे गये है, केवल सतीश की माँ के लिए ७५ रुपये मासिक निर्धारित कर गये है। अब क्या किया जाय ?

भादुडी—इतनी चिन्ता क्यों है तुम्हें ?

पत्नी—तुम भी खूब आदमी हो ! तुम्हारी लड़की जो सतीश को प्यार करती है, उसे शायद तुम दोनों आँखों से भी देख नही पाते हो ! तुम तो उन लोगों का विवाह कर देने को भी तैयार थे। अब क्या उपाय करोगे ?

भादुडी—मैं तो मन्मथ के रुपयों पर विशेष नर्भर नही था।

पत्नी—तब क्या लड़के के चेहरे पर ही निर्भर हुये बैठे थे। अन्न-वस्त्र शायद अनावश्यक है ?

भादुड़ी—पूरी तरह आवश्यक है; कोई कुछ भी कहे, उससे अधिक आवश्यक और कुछ भी नही है। सतीश के एक मौसी है, शायद जानती हो ?

पत्नी—मौसा-मौसी तो ढेरों लोगों के होते हैं, मगर उनसे भूख तो नही बुझ पाती !

भादुडी—वह मौसा मेरे मुवक्किल हैं। अगाध रुपया है, बाल बच्चा कोई नहीं है, आयु भी कोई कम नहीं है—वे तो सतीश को ही दत्तक पुत्र के रूप में लेना चाहते है।

पत्नी—तब तो अच्छे मौसा है। तो झटपट ले लें न ! तुम जरा धक्का दे दो न।

भादुड़ी—धक्का मुझे नही देना होगा, उनके घर के भीतर ही धक्का देने वाला आदमी है। सभी प्रायः ठीक-ठाक है, अब केवल एक कानूनी खटका रह गया है।—इकलौते लडके को दत्तक पुत्र लिया जा सकता है या नहीं। इसके अतिरिक्त, सतीश अब वयस्क भी हो गया है।

पत्नी—कानून तो तुम्ही लोगों के हाथ में है—तुम लोग आँखें बन्द करके एक फैसला दे दो न !

भादुडी—घबराओ नही, दत्तक पुत्र लिए बिना भी कई उपाय हैं।

पत्नी—मुझे बचा लिया तुमने। मैं सोच रही थी कि यह सम्बन्ध किस तरह तोड़ूँ ! फिर, हमारी नेली जैसी जिद्दिन लड़की है, वह क्या कर बैठती, कहा

नहीं जा सकता ! जरा देखो, तुम्हारी लड़की ने रो-रोकर आँखें फुला ली हैं। कल जिस समय खाने बैठी थी, उसी समय सतीश के पिता के मरने की खबर मिली, और उसी समय उठकर चली गयी।

भादुड़ी—परन्तु, नेली सतीश को प्यार करती है, देखने से तो ऐसा नहीं लगता ! वह तो सतीश को रुला-रुला देता है। मैं यह भी सोचता हूँ कि नन्दी के प्रति उसका अधिक खिचाव है।

पत्नी—तुम्हारी लड़की का यही स्वभाव है—वह जिसे प्यार करती है, उसी को जलाती है ! देखो न, बिल्ली के बच्चे को लेकर क्या काण्ड करती रहती है। किन्तु आश्चर्य यही है कि फिर भी उसे कोई छोडना नही चाहता।

(नलिनी का प्रवेश)

नलिनी—माँ, एक बार सतीश बाबू के घर नही जाओगी ? उसकी माँ शायद बहुत दु:खी होकर पड़ी होंगी। पिताजी, मैं एक बार उनके पास जाना चाहती हूँ।

११

सतीश—माँ, यहाँ मैं कितने सुख मे हूँ, यह तो मेरे कपडे-लत्तों से ही समझ सकती हो। परन्तु मौसाजी जब तक मुझे गोद (दत्तक पुत्र के रूप मे) नही ले लेते, तब तक निश्चिन्त नही हो पाऊँगा। तुम जो मासिक खर्च पाती हो, मेरी तो उससे कोई सहायता होगी नही ! बहुत दिनों से 'लूँगा-लूँगा' करने पर भी, मुझे गोद ले नही रहे हैं—लगता है, उन लोगों को मन-ही-मन सन्तान-प्राप्ति की आशा अभी तक है।

विधु—(हताश भाव से) वह आशा सफल हो सकती है, सतीश !

सतीश—ऐंऽ ! कहती क्या हो माँ !

विधु—लक्षण देखकर तो ऐसा ही लगता है !

सतीश—लक्षण बहुत बार गलत भी तो होते हैं।

विधु—नहीं, गलत नही सतीश, इस बार तेरा भाई होगा !

सतीश—क्या कह रही हो माँ, उसका ठिकाना ही नही है—भाई ही होगा यह किसने कहा ? बहिन नहीं हो सकती क्या ?

विधु—दीदी का चेहरा जैसा हो गया है, अवश्य ही उनके लड़की नहीं होगी, लड़का ही होगा! इसके अतिरिक्त, लड़का हो या लड़की ही हो, हम लोगों के लिए तो दोनों समान ही हैं।

सतीश—इतनी उम्र का पहला बच्चा है, इस बीच अनेक विघ्न भी हो सकते हैं!

विधु—सतीश,' तू नौकरी के लिए प्रयत्न कर!

सतीश—असम्भव! परीक्षा पास नहीं कर सका। इसके अतिरिक्त, नौकरी करने का अभ्यास मेरा एकदम चला गया है। परन्तु कुछ भी कहो माँ, यह भारी अन्याय है! मैं तो अब तक पिताजी की सम्पत्ति पा लेता, उसमे वचित हो गया, अब यदि फिर···।

विधु—अन्याय नही तो क्या है, सतीश! इधर तुझ घर ले आये, उधर फिर डॉक्टर को बुलाकर औपधि-सेवन भी चलता रहा। अपनी बहिन के लडके के साथ यह कैसा व्यवहार! अन्त मे दयाल डॉक्टर की औपधि तो लग गयी। परेशान मत हो, सतीश! 'एकाग्रमन से भगवान को पुकार, उनके सामने कोई डॉक्टरी नहीं लगती। वे यदि···

सतीश—अहा, वे यदि इस समय भी—अब भी समय है! माँ इन लोगों के प्रति मेरा कृतज्ञ रहना ही उचित था; परन्तु जैसा अन्याय हुआ है, उससे उस भावना की रक्षा करना कठिन हो उठा है। ईश्वर के समीप इन लोगों के लिए एक दुघर्टना की प्रार्थना किये बिना नहीं रह पा रहा हूँ—वे दया करके यदि··

विधु—अहा, वही हो; अन्यथा तेरा क्या होगा सतीश?' मैं यही सोच रही हूँ। हे भगवान, तुम यदि···

सतीश—यह यदि नहीं हुआ, तो फिर ईश्वर को मैं तो नहीं मानूँगा। अखबारों में नास्तिकता का प्रचार करूँगा!

विधु—अरे चुप-चुप! इस समय ऐसी बात मुँह पर नहीं लानी चाहिए। वे दयामय है, उनकी दया होने पर क्या नहीं हो सकता! सतीश, तू आज ऐसा बन-ठन कर कहाँ जा रहा है? ऊँचे कॉलर के भी ऊपर तेरा सिर जैसे आकाश को छू रहा है! तू गर्दन कैसे झुका सकेगा?

सतीश—इसी तरह कॉलर के बल पर जितने दिनों तक सिर उठाकर चल सकूँगा, चलूँगा। उसके बाद गर्दन झुकाने का दिन जब आएगा, उस समय इन

सबको छोड ही दूँगा। विशेष कार्य है माँ, जा रहा हूँ; बातचीत बाद में होगी।

(प्रस्थान)

विधु—काम कहाँ है, सब जानती हूँ! मैया री, लड़के से और विलम्ब सहन नहीं हो पा रहा। यह विवाह होगा ही! मैं जानती हूँ, मेरे सतीश का भाग्य खराब नहीं है। पहले विघ्न कितना ही पड़े, अन्त मे फल उसका अच्छा ही होता है, यह मैं बराबर देखती आ रही हूँ। होगा क्यों नहीं? मैंने तो अपनी जानकारी में कोई पाप किया नहीं है—मैं तो सती स्त्री थी, इसीलिए मुझे पक्का विश्वास है कि दीदी के इस बार···

१२

सुकुमारी—सतीश!

सतीश—क्या है, मौसी?

सुकुमारी—कल जो तुम से बच्चे के कपड़े खरीद लाने के लिए इतना कहा था, शायद उसे अपना अपमान अनुभव कर लिया?

सतीश—अपमान किसका, मौसी? कल भादुडी साहब के यहाँ मेरा निमन्त्रण था, इसीलिए—

सुकुमारी—भादुडी साहब के यहाँ तुम्हें इतनी जल्दी-जल्दी आने-जाने की जरूरत क्या है, यह तो समझ में नहीं आता। वे लोग साहब आदमी है, तुम्हारी जैसी अवस्था के लोगों को, क्या उनके साथ मित्रता करना शोभा देता है! मैंने तो सुना है, तुम्हें वे लोग आजकल पूछते ही नहीं हैं; फिर भी क्या इस रगीन टाई के ऊपर टाई-रिंग पहनकर, विलायती कार्तिकेय बनकर उन लोगों के यहाँ जाना जरूरी है? तुम्हें क्या तनिक भी सम्मान-बोध नहीं है? ऐसा ही यदि होता, तो क्या काम-काज की कोई कोशिश किये बिना यहाँ इसी तरह पड़े रहते? तिस पर भी, कोई काम करने के लिए कहने पर मन-ही-मन नाराज हो जाता ही कि कहीं कोई घर का मालिक समझने में भूल न कर बैठे। मालिक होना अच्छा तो है परन्तु वह भी तो मेहनत से कमाकर ही खाता है!

सतीश—मौसी, मैं भी शायद वैसा कर पाता, परन्तु तुम्ही ने तो···

सुकुमारी—वही तो! जानती थी कि अन्त में मुझको ही दोष दिया जाएगा।

अब समझ गयी, तुम्हारे पिता तुम्हें ठीक पहचानते थे ! इसीलिए तुम्हें इस तरह के अनुशासन में रखा था। और मैंने बच्चा समझकर, दया करके तुम्हें घर में जगह दी, जेल से बचाया, तो अन्त में मैं ही दोषी बनी ! इसी को अकृतज्ञता कहते हैं ! अच्छा, भले ही मेरा ही दोष हो, फिर भी जितने दिन यहाँ हमारा अन्न खा रहे हो, आवश्यकता पड़ने पर न हो कुछ काम ही कर दिया करो ! क्या ऐसा कोई नहीं करता है ? इसमें क्या बड़ा अपमान अनुभव होता है ?

सतीश—कुछ नहीं, कुछ नहीं ! क्या करना है, बोलो। मैं अभी करता हूँ।

सुकुमारी—बच्चे के लिए साढ़े सात गज रेनबी सिल्क चाहिए—और एक सेला का सूट—

(सतीश जाने को प्रस्तुत होता है)

—सुनो-सुनो उसका नाप ले जाना, जूते भी चाहिए !

(सतीश जाना चाहता है)

—इतने आकुल क्यों हो रहे हो—सब बातों को अच्छी तरह से सुनते जाओ। आज भी शायद भादुड़ी साहब की रोटी-बिस्कुट खाने के लिए प्राण छटपटा रहे हैं। बच्चे के लिए स्ट्रॉ-हैट ले आना—और रूमाल भी एक दर्जन चाहिए।

(सतीश का प्रस्थान। उसे दुबारा पुकारकर)

—सुनो सतीश, एक और बात है ! सुना है, अपने मौसा से तुमने, नया सूट खरीदने के लिए, मुझ से कहे बिना रुपये माँग लिये हैं। जब स्वयं की सामर्थ्य होगी, उस समय जितनी खुशी हो साहबीपन करना; परन्तु पराये पैसे पर, भादुड़ी साहब को दिखाने के लिए, मौसा को कगाल मत कर देना। वे रुपये मुझे लौटा देना ! आजकल हमारी बड़ी खींचतान का समय है।

सतीस—अच्छा, लाए देता हूँ !

सुकुमारी—इस समय तुम दुकान जाओ, उन्हीं रुपयों से सामान खरीद कर, बाकी लौटा देना। हिसाब रखने में भूल मत कर जाना !

(सतीश जाना चाहता है)

—सुनो, सतीश ! इन थोड़ी-सी चीजों को खरीदने में, कहीं फिर ढाई रुपया गाड़ी-भाड़ा मत लगा बैठना। इसीलिए तुमसे कुछ लाने को कहते हुए भय लगता है। दो कदम पैदल चलने पर ही तुम्हारा सिर चकराने लगता है—पुरुष आदमी को इतना बाबू बनने से काम नहीं चलता। तुम्हारे पिता रोज सुबह पैदल जाकर,

नये बाजार से मछलियाँ खरीद लाते थे—याद है ? मजदूरों को भी वे एक पैसा नहीं देते थे।

सतीश—तुम्हारा उपदेश याद रहेगा, मैं भी नहीं दूंगा ! आज से तुम्हारे यहाँ मजदूर की मजदूरी, बेयरे की तनख्वाह, जितनी भी कम लग सके, इस पर मैं हमेशा ध्यान रखूंगा।

१३

हरेन—दादा, तुम बहुत देर से यह क्या लिख रहे हो, किसे लिख रहे हो ? बोलो न !

सतीश—जा जा, तुझे यह जानने की क्या जरूरत है ? जाकर खेल।

हरेन—देखूं न, क्या लिख रहे हो ? मैं आजकल पढ़ सकता हूँ।

सतीश—हरेन, तू मुझे परेशान मत कर, कहे देता हूँ—तू जा !

हरेन—'प' में 'य' मिलाकर 'आ' का डण्डा लगा दिया, तो 'प्या' हुआ और फिर 'र' लिखा, तो हुआ 'प्यार'। दादा, क्या प्यार की बातें लिख रहे हो ? बोलो न ! तुम्हें कच्चा अमरूद अच्छा लगता है न ? मुझे भी लगता है।

सतीश—ओह, हरेन, इतना मत चिल्ला, प्यार की बात मैं नहीं लिख रहा हूँ।

हरेन—एँऽ ! झूठ बोल रहे हो ! मैंने जो पढा है, आधे 'प' में 'य' मिलाकर 'आ' का डण्डा 'प्या' और फिर 'र'—तो हो गया 'प्यार'। अच्छा माँ को बुलाता हूँ, उन्हें दिखाओ।

सतीश—नहीं-नहीं, माँ को नहीं बुलाना ! राजा बेटा, तू जरा खेलने को चला जा। मैं इसे खत्म कर लूं।

हरेन—यह क्या है, दादा ? यह तो फूलों की माला है। मैं लूंगा !

सतीश—उससे हाथ मत लगाना। अरे छूना नहीं, तोड़ डालेगा क्या !

हरेन—नहीं, मैं तोडूंगा नहीं, मुझे दो न !

सतीश—बेटा, कल मैं तुझे बहुत-सी मालाएँ ला दूंगा; इसे रहने दे।

हरेन—दादा, यह अच्छी है, मैं इसी को लूंगा !

सतीश—नहीं, यह एक दूसरे आदमी की वस्तु है; मैं तुझे नहीं दे सकूंगा।

हरेन—एँऽ, झूठ बात है ! मैंने तुमसे लेमनजूस लाने के लिए कहा था, तुम

उन्हीं रुपयों से माला खरीद लाये हो—वही सही, किसी दूसरे आदमी की वस्तु ही सही !

सतीश—हरेन, राजा भैया, तू जरा चुप रह; चिट्ठी तो समाप्त कर लूँ। कल तुझे मैं बहुत से लैमनजूस खरीद दूँगा।

हरेन—अच्छा, तुमने क्या लिखा है, मुझे दिखाओ !

सतीश—अच्छा दिखाऊँगा, पहले लिखना समाप्त कर लूं।

हरेन—तो मैं भी लिखता हूँ। (स्लेट लेकर चिल्लाते हुए) आधे 'प' मे 'य' मिला कर 'आ' का डण्डा लगाया, तो हुआ 'प्या', पीछे लगाया 'र' तो हुआ 'प्यार'।

सतीश—चुप, चुप, इतना चिल्ला मत ! ओह, ठहर, ठहर !

हरेन—तो मुझे माला दो !

सतीश—अच्छा ले, परन्तु खबरदार, तोड़ना मत—अरे क्या कर दिया ! जिसके लिए मना किया था वही ! फूल नोच डाले ! ऐसा दुष्ट लड़का भी तो नहीं देखा।

(माला छीनकर चपत लगाता है)

—अभागा, खबरदार ! जा, यहाँ से भाग ! कहता हूँ, जा !

(हरेन का चीत्कार-स्वर मे रोना, सतीश का शीघ्रता से प्रस्थान)

(विधुमुखी का घबराते हुए प्रवेश)

विधु—सतीश ने शायद हरेन को रुला दिया है। दीदी को खबर मिली, तो सर्वनाश हो जाएगा ! हरेन, मेरा बेटा, मेरे राजा, मेरा सोना !

हरेन (रोता हुआ)—दादा ने मुझे मारा है।

विधु—अच्छा, अच्छा, चुप रह, चुप रह ! मैं दादा को खूब मारूँगी अभी······

हरेन—दादा फूल की माला ले गये।

विधु—अच्छा, उसे मै उसके पास से लिए आती हूँ।

(हरेन का रोना)

—इस तरह बात-बात पर रो पड़ने वाला लड़का भी तो मैंने कभी नहीं देखा। दीदी ने लाड़ करके इस लड़के का दिमाग खराब कर दिया है। चाहे, उसी समय उसे देना पड़ेगा ! देखो न, सारी दूकान खाली

खरीदे जाते हैं, जैसे किसी नवाब का बेटा हो। छिः-छिः अपने लड़के को क्या इसी तरह से मिट्टी कर दिया जाता है ? (डाँटकर) लडके, चुप रह, कहे देती हूँ। वह हौआ आ रहा है !

(सुकुमारी का प्रवेश)

सुकुमारी—विधु, यह क्या है जी ? मेरे लड़के को इसी तरह से भूत का भय दिखाया जाता है ? मैंने नौकर-चाकरों से मना कर दिया है, कोई उसके आगे भूत की बात कहने का साहस भी नही करता। और तुम शायद मौसी होकर उसका यही उपकार करने बैठी हो ! उसे तुम आँखो से देख तक नही पाती—इसे मैं खूब समझ गयी हूँ। मैंने बराबर तुम्हारे लडके को अपने पेट के लड़के की तरह पाला-पोसा, और तुम शायद आज उसी का बदला लेने आयी हो।

विधु (रोती हुई)—दीदी, ऐसी बात मत कहो ! मेरे लिए मेरे सतीश और तुम्हारे हरेन मे क्या अन्तर है !

हरेन—माँ, दादा ने मुझे मारा था।

विधु—छि छिः, बेटा, झूठ नहीं बोलते ! तेरा दादा तो यहाँ था ही नही तो मारता किस तरह ?

हरेन—वाह, दादा तो इसी जगह बैठकर चिट्ठी लिख रहे थे—उसमे था आधे 'प' मे 'य' मिला हुआ और आ का डंडा 'प्या', पीछे लगा था 'र', इस तरह हुआ 'प्यार'। माँ, तुमने मेरे लिए दादा से लैमनजूस लाने को कहा था, दादा उन्ही रुपयों से फूलों की माला खरीद लाये थे—उसी मे मैंने जरा सा हाथ लगाया था कि तभी मुझे मारा।

सुकुमारी—तुम माँ-बेटे मिलकर मेरे लड़के के पीछे लग गये हो शायद ! यह तुम लोगो से सहन नही होता। इसके जाने पर ही तुम लोग बच सकोगे। मैं तभी कहती हूँ, लडका रोज डॉक्टर-कविराजों की बोतल-पर-बोतल दवाएँ पी रहा है, फिर भी दिन-प्रति-दिन ऐसा रोगी क्यो होता जा रहा है ? मामला आज समझ में आ गया।

१४

सतीश—मैं तुम्हारे पास विदा लेने आया हूँ, नेली !

नलिनी—क्यों, कहाँ जाओगे ?

सतीश—जहन्नुम में !

नलिनी—वहाँ जाने के लिए क्या विदा लेने की जरूरत पड़ती है ? जो लोग पता जानते हैं, वे तो घर बैठे ही वहाँ पर जा सकते हैं। आज तुम्हारा मिजाज ऐसा क्यों हो रहा है ? कॉलर शायद ठीक आधुनिक फैशन का नहीं बना है।

सतीश—तुम क्या यह समझती हो कि मैं केवल कॉलर की बात ही दिन-रात सोचता रहता हूँ ?

नलिनी—वही तो समझती हूँ ! इसीलिए तो अचानक तुम अत्यन्त चिन्तातुर से दीखने लगते हो।

सतीश—मजाक मत करो नेली, तुम यदि आज मेरा हृदय देख पातीं···

नलिनी—तब तो गूलर के फूल और साँप के पाँच पाँव भी देख लेती।

सतीश—फिर मजाक ? तुम बड़ी निष्ठुर हो ! सच कहता हूँ नेली, आज विदा लेने आया हूँ।

नलिनी—दूकान पर जा रहे हो ?

सतीश—विनती करता हूँ नेली, मजाक करके मुझे जलाओ मत ! आज मैं हमेशा के लिए विदा लूंगा।

नलिनी—क्यों, अचानक इसके लिए तुम्हारा इतना अधिक आग्रह किस लिए है ?

सतीश—सच बात कहता हूँ, मैं इतना गरीब हूँ, इसे तुम नहीं जानती !

नलिनी—तो इसमें तुम्हें डरने की क्या बात है ? मैंने तो तुमसे उधार रुपये माँगे नहीं हैं।

सतीश—तुम्हारे साथ मेरे विवाह का सम्बन्ध हुआ था···

नलिनी—इसीलिए भागोगे ? विवाह हुए बिना ही दिल धड़कने लगा ?

सतीश—मेरी अवस्था जानते ही, मिस्टर भादुड़ी ने हमारा सम्बन्ध तोड़ दिया।

नलिनी—तो अब उसी अपमान से क्या निराश होकर चले जाओगे ? इतने बड़े अभिमानी व्यक्ति का किसी के भी साथ सम्बन्ध रखना शोभा नहीं देता। इसीलिए मैं तुम्हारे मुँह से प्यार की बात सुनते ही, मजाक में उड़ा देती हूँ।

सतीश—नेली, तो क्या अब भी मुझे आशा रखने के लिए कहती हो ?

नलिनी—दुहाई है सतीश, ऐसे औपन्यासिक ढग से बातें बनाकर मत कहो, मुझे हँसी आती है ! मैं तुमसे आशा रखने के लिए क्यों कहूँगी ? आशा जो रखता है, वह अपनी ही गरज से रखता है, लोगों की राय सुनकर नहीं रखता।

सतीश—यह तो ठीक बात है ! मैं जानना चाहता हूँ, तुम गरीबी से घृणा करती हो या नहीं ?

नलिनी—खूब करती हूँ, यदि गरीबी ढोंग के द्वारा स्वयं को ढाँकने की चेष्टा करे।

सतीश—नेली, तुम क्या कभी भी अपनी चिरकालीन आराम की आदत को छोड़कर, गरीब के घर की लक्ष्मी हो सकती हो ?

नलिनी—उपन्यास में जिस तरह की बीमारी की बातें पढने को मिलती है, उनके चक्कर में पड़ने पर आराम स्वयं ही घर को छोड जाता है।

सतीश—बीमारी का कोई लक्षण क्या तुम्हारे···

नलिनी—सतीश, तुम कभी भी किसी परीक्षा मे उत्तीर्ण नहीं हो सके। स्वय नन्दी साहब भी शायद ऐसा प्रश्न नहीं उठाते। तुम लोगों को एक रत्ती भर भी प्रश्रय देना नहीं चल सकता।

सतीश—तुमको मैं आज भी नहीं पहचान सका, नेली !

नलिनी—पहचानोगे कैसे ? मैं तो तुम्हारी आधुनिक फैशन की टाई नहीं हूँ, कॉलर नहीं हूँ—दिन रात जिसके बारे मे सोचते रहते हो, उसी को तुम पहचानते हो ?

सतीश—मैं हाथ जोड़कर कहता हूँ, नेली—तुम आज मुझसे इस तरह न बोलो। मैं किसके बारे मे सोचता हूँ, वह तुम अवश्य जानती हो···

नलिनी—तुम्हारे बारे मे मेरी अन्तर्दृष्टि इतनी प्रखर है, यह इतना पक्का मत समझो। लो, पिताजी आ रहे हैं। मुझे यहाँ देखकर वे व्यर्थ ही नाराज हो जाएँगे, मैं जाती हूँ।

(प्रस्थान। मिस्टर भादुड़ी का प्रवेश)

सतीश—मिस्टर भादुडी, मैं विदा लेने आया हूँ !

भादुड़ी—अच्छा, तो आज···

सतीश—जाने से पहले एक बात है।

भादुड़ी—परन्तु मेरे पास समय तो नहीं है, मैं अभी तुरन्त घूमने को निकलूंगा।

सतीश—कुछ क्षण के लिए मैं आपके साथ चल सकता हूँ ?

भादुड़ी—तुम चल सकते हो, इसमें सन्देह नही है; परन्तु मैं नहीं चल सकूँगा। आजकल मैं साथी के अभाव में उतना अधिक व्याकुल नही।

१५

शशधर—ओह, क्या कहती हो ! तुम कहीं पागल तो नहीं हो गयी हो ?

सुकुमारी—मैं पागल नहीं; तुम्हीं आँखों से नही देख पाते हो।

शशधर—कोई भी आश्चर्यजनक नहीं है, दोनों ही सम्भव हैं ! परन्तु···

सुकुमारी—हमारे हरेन के जन्म से ही, देख नही रहे हो, उन लोगों का मुँह कैसा हो गया है ! सतीश के भावों को देखकर समझ नही पाते हो ?

शशधर—मुझमें भाव समझने की इतनी क्षमता नही है, वह तो तुम जानती ही हो। मन नामक वस्तु को अदृश्य पदार्थ के रूप में समझने का ही, बचपन से, मुझमें न जाने कैसा एक सस्कार बद्धमूल हो गया है। घटना देखकर ही कुछ थोड़ा-सा समझ पाता हूँ।

सुकुमारी—सतीश, जब भी अवसर पाता है, तुम्हारे लड़के को मारता है। और विधु भी उसके पीछे-पीछे जाकर, बच्चे को हौआ का भय दिखाती हैं।

शशधर—यह देखो, तुम लोग छोटी-सी बात को बड़ी बना बैठती हो। यदि सतीश ने बच्चे को किसी समय···

सुकुमारी—उसे तुम सह सकते हो, मैं नही सह सकती—बच्चे को तुम्हें तो गर्भ में रखना नही पड़ा है !

शशधर—इस बात को मैं अस्वीकार नही कर सकता ! मगर इस समय तुम्हारा अभिप्राय क्या है, सुनूं तो ?

सुकुमारी—शिक्षा के बारे मे तुम्ही तो बड़ी-बड़ी बातें कहते हो। एक बार तुम्ही सोच देखो न, हम लोग हरेन को जिस ढग से शिक्षा देना चाहते हैं, उसकी मौसी उसे दूसरे रूप में सिखाती है—सतीश का उदाहरण भी उसके लिए कैसा होगा, इसे भी तो सोचना होगा !

शशधर—तुम जब इतना अधिक सोचती हो, तब उससे अधिक मुझे और सोचने की जरूरत ही क्या है ! अब क्या करना है, वह कहो !

सुकुमारी—मैं कहती हूँ, सतीश से तुम कहो, अपनी माँ के पास रहकर, वह अब काम-काज का प्रयत्न करे ! पुरुष आदमी, पराये पैसे पर बाबूगीरी करे, यह क्या अच्छा दिखाई देता है ?

शशधर—उसकी माँ को जितने रुपये मिलते है, उसमें सतीश का काम कैसे चलेगा ?

सुकुमारी—क्यों, उन्हें मकान का किराया तो देना नही पड़ता। महीने में पचहत्तर रुपये कम है क्या ?

शशधर—सतीश को जैसी आदतें पड गयी हैं, पचहत्तर रुपये तो वह चुरुट की नोंक पर ही फूंक देगा। माँ के गहने वगैरह थे, वे तो बहुत दिनो पहले ही चले गये। अब भोग-प्रसाद को गिरवी रखकर तो कर्ज नहीं चुकाया जा सकता !

सुकुमारी—जिसकी सामर्थ्य कम है, उसे इतनी महँगी आदतों की जरूरत ही क्या है !

शशधर—मन्मथ भी तो यही बात कहता था ! हम लोगों ने ही तो सतीश को दूसरी तरह से समझा दिया था। अब उसे दोष कैसे दिया जा सकता है ?

सुकुमारी—नही, दोष क्या उसका हो सकता है ? सब दोष मेरा ही है ! तुम तो और किसी में कोई दोष देख ही नही पाते—केवल मेरे सम्बन्ध में ही तुम्हारी दर्शन-शक्ति बढ़ जाती है।

शशधर—अजी, नाराज क्यों होती हो ? मैं भी तो दोषी हूँ !

सुकुमारी—सो हो सकता है, तुम्हारी बात तुम जानो। परन्तु मैंने कभी भी उससे ऐसी बात नही कही थी कि तुम अपने मौसा के घर में पाँव पर पाँव रख-कर मूँछों पर ताव दो, और लम्बी आरामकुर्सी पर बैठे-बैठे मेरे बच्चे के ऊपर विष-दृष्टि डालते रहो !

शशधर—नहीं, ठीक इन बातों की तुमने, उसे सिर की सौगन्ध खिलाकर शपथ नही करा ली है—अतएव मैं तुम्हे दोष नही दे सकता ! अब क्या करना होगा, सो कहो !

सुकुमारी—सो तुम जो अच्छा समझो, वह करो ! परन्तु, मैं कहती हूँ, सतीश जब तक इस मकान में रहेगा, मैं बच्चे को किसी तरह भी बाहर नही निकलने दे

सकती ! डॉक्टर ने बच्चे को हवा खिलाने के लिए विशेष रूप से कह दिया है—परन्तु हवा खाने को जाने पर, वह किस समय अकेला सतीश की नजर में पड़ जाए, यह बात सोचकर मेरा मन निश्चिन्त नहीं रह पाता। वह तो मेरी ही अपनी बहिन का लड़का है, परन्तु मैं उस पर एक क्षण के लिए भी विश्वास नहीं करती—यह मैंने तुमसे स्पष्ट कह दिया !

(सतीश का प्रवेश)

सतीश—किस पर विश्वास नहीं करती मौसी, मुझ पर ? मैं तुम्हारे लड़के का, सुयोग मिलते ही गला दबाकर मार डालूंगा, यही तुम्हें भय है ? यदि मैं उसे मार डालूं,तो तुमने अपनी बहिन के लड़के का जो अनिष्ट किया है, उसकी अपेक्षा क्या उसका अधिक अनिष्ट करना हो जाएगा ? किसने मुझे बचपन से नबाव की तरह शौकीन बनाया और आज भिक्षुक की तरह सड़क पर बाहर निकाल दिया है ? कौन मुझे मेरे पिता के अनुशासन में से निकाल कर संसार की लाँछना में खींच लाया ? कौन मुझे···

सुकुमारी—अजी, सुन रहें हो ? तुम्हारे सामने मेरा इस तरह से अपमान कर रहा है ! अपने ही मुँह से कह रहा है न, कि बच्चे को गला दबाकर मार डालेगा ? ओ मैया, क्या होगा रे ! मैंने कालसर्प को अपने हाथ से दूध-केले खिलाकर पाला है !

सतीश—दूध-केले मेरे भी घर पर थे; उन दूध-केलों से मेरा रक्त, विष नहीं बन सकता था; उनसे चिरकाल के लिए बंचित करके, तुमने जो दूध-केले मुझे खिलाये, उनसे मुझ में विष जम गया है ! सच बात ही कह रहा हूँ, अब मुझसे डरना चाहिए—अब मैं डँस सकता हूँ !

(विधुमुखी का प्रवेश)

विधु—क्या है सतीश, क्या हुआ है ? तुझे देखकर तो भय लगता है ! इस तरह से क्यों ताक रहा है ? मुझे पहिचान नहीं पा रहा है ? मैं तो तेरी माँ हूँ, सतीश !

सतीश—माँ, तुम्हें माँ कहूँ, किस मुँह से ? माँ होकर भी, क्यों तुमने मेरे पिता के अनुशासन से मुझे वंचित कर दिया ? क्यों तुमने मुझे जेल जाने से लौटा लिया ? वह अपनी मौसी के घर से भी भयानक थी ? तुम लोग ईश्वर को माँ कहकर पुकारते हो, वे यदि तुम्हारी जैसी माँ हों, तो मैं उनका स्नेह भी नहीं

चाहता—वे चाहे मुझे नरक में ही डाल दें !

शशधर—ओह, सतीश ! चलो-चलो—क्या बक रहे हो, ठहरो ! आओ, बाहर, मेरे कमरे में आओ !

१६

शशधर—सतीश, जरा शान्त होओ ! तुम्हारे प्रति अत्यन्त अन्याय हुआ है, इसे क्या मैं नही जानता ? तुम्हारी मौसी ने क्रोध की दशा में जो कुछ कहा, उसे क्या इस तरह से मान लेना चाहिए ? देखो, आरम्भ मे जो भूल हो गयी, उसका अब जितना सम्भव होगा, प्रतिकार किया जाएगा, तुम निश्चिन्त रहो !

सतीश—मौसाजी, प्रतिकार की अब कोई सम्भावना नही है ! मौसी के साथ मेरा अब जैसा सम्पर्क बन गया है, उससे तुम्हारे घर का अन्न मेरे गले मे और नही उतरेगा ! इतने दिनों तक तुम लोगों का जो खर्च किया है; उसे यदि आखिरी कौड़ी तक चुका न सकूँ, तो मुझे मरने पर भी शान्ति नही मिलेगी ! प्रतिकार यदि कुछ है, तो वह मेरे हाथ मे ही है; तुम क्या प्रतिकार करोगे !

शशधर—नही, सुनो सतीश, जरा स्थिर होओ ! तुम्हारा जो कर्तव्य है, उसे तुम बाद में सोचना—तुम्हारे सम्बन्ध में हम लोगों ने अन्याय किया है, उसका प्रायश्चित तो मुझे ही करना होगा ! देखो, अपनी सम्पत्ति का एक अंश मैं तुम्हें लिख दूँगा—उसे तुम दान मत समझना, वह तुम्हारा हक होगा ! मैंने निश्चित कर रखा है—परसों शुक्रवार को रजिस्ट्री कर दूँगा !

सतीश (शशधर के पाँवों की धूल लेकर)—मौसाजी, और क्या कहूँ—तुम्हारे इस स्नेह से…

शशधर—अच्छा, रहने दो, रहने दो ! वह सब स्नेह-स्नेह मैं कुछ नही समझता। रस का लेश भी मुझमे कुछ नहीं है—जो कर्तव्य है, उसका किसी तरह पालन करना ही होगा, यही समझता हूँ !…साढे आठ बज गये। तुमने आज कोरिन्थियन (थियेटर) जाने को कहा था न—जाओ सतीश ! एक बात तुमसे कहे रखता हूँ, दानपत्र मैंने मिस्टर भादुड़ी से ही लिखवा लिया है। ऐसा भाव लगा था कि वे इस मामले से अत्यन्त सन्तुष्ट हुए हैं—तुम्हारे प्रति उनका आकर्षण न हो, ऐसा दिखाई नहीं दिया था। यही क्यों, मेरे लौटते समय उन्होंने कहा था—सतीश आजकल हम लोगों से भेंट करने क्यों नही आ रहा है ?

(सतीश का प्रस्थान)

—ओ रे रामचरण, अपनी मालकिन को जरा बुला दे तो !

(सुकुमारी का प्रवेश)

सुकुमारी—क्या निश्चित किया ?

शशधर—एक चमत्कारिक प्लान तय किया है।

सुकुमारी—तुम्हारा प्लान जैसा चमत्कारिक होगा, उसे मैं जानती हूँ। जो भी हो, सतीश को इस मकान से विदा तो कर दिया ?

शशधर—वही यदि न करूँ, तो प्लान किसलिए है ! मैंने निश्चित किया है, सतीश को अपने मानिकपुर की जमीदारी के हिस्से की लिखा-पढ़ी कर दूँगा—इससे वह स्वतन्त्रतापूर्वक, अपना खर्च स्वय चलाते हुए, अलग रह सकेगा। तुम्हें और नाराज नहीं करेगा !

सुकुमारी—अहा, क्या सुन्दर प्लान निश्चित किया है ! सौन्दर्य पर मैं एकदम मुग्ध हो गयी ! नही, नही, तुम ऐसा पागलपन नही कर सकोगे, मैंने कह दिया !

शशधर—देखो, पहले तो उसी को सारी सम्पत्ति दे देने की बात थी !

सुकुमारी—उस समय तो मेरा हरेन नही जन्मा था ! इसके अतिरिक्त, तुम क्या सोचते हो, तुम्हारे और बाल-बच्चे नही होंगे ?

शशधर—सकु, सोच देखो, हम लोगों से अन्याय हो रहा है ! मान क्यों नही लेती हो कि तुम्हारे दो लड़के हैं !

सुकुमारी—वह सब मैं नही समझती ! तुम यदि ऐसा काम करोगे, तो मैं गले मे रस्सी बाँधकर मर जाऊँगी, यह मैं कहे जाती हूँ !

(सुकुमारी का प्रस्थान। सतीश का प्रवेश)

शशधर—क्यों सतीश, थियेटर नही गये ?

सतीश—नहीं मौसाजी, आज अब थियेटर नही ! यह देखो, दीर्घ काल बाद, मिस्टर भादुड़ी के यहाँ से मुझे निमन्त्रण मिला है। अपने दान-पत्र का फल देखो ! संसार के ऊपर मुझमें धिक्कार उत्पन्न हो गया है मौसाजी ! मैं तुम्हारा वह ताल्लुका नहीं लूँगा !

शशधर—क्यों, सतीश ?

सतीश—मैं छद्म वेश में, पृथ्वी के किसी भी सुख का उपभोग नही करूँगा !

मेरी यदि स्वयं की कोई कीमत होगी, तो उस कीमत को देकर, जितना भी मिल सकेगा, उतने का ही उपभोग करूँगा ! उससे अधिक एक कानी कौड़ी भी नही चाहता। मौसी की राय तो ले ली है ?

शशधर—नही; उसे वे···अर्थात्, वह एक तरह से हो जाएगी। एकदम वे राजी नही हो सकेंगी, परन्तु···

सतीश—तुमने उनसे कहा था ?

शशधर—हाँ, कहा अवश्य था ! विलक्षण ! उनसे कहे बिना ही क्या फिर···

सतीश—वे राजी हो गयी ?

शशधर—उसे ठीक से राजी होना तो नही कहा जा सकता, परन्तु अच्छी तरह से समझा देने···

सतीश—व्यर्थ की चेष्टा होगी, मौसाजी ! उनकी नाराजी से मैं तुम्हारी सपत्ति नही लेना चाहता ! तुम उनसे कहो, आज तक उन्होने मुझे जो अन्न खिलाया है, उसे चुकाये बिना मैं नही बच सकूँगा ! उनका समस्त ऋण, ब्याज सहित चुका देने के बाद ही मैं साँस लूँगा !

शशधर—उसकी कोई जरूरत नही है, सतीश—तुम्हें बल्कि कुछ नकद रुपये चुपचाप···

सतीश—नही, मौसाजी, और कर्ज नही बढ़ाऊँगा। तुमसे अब मेरा केवल एक अनुरोध है—अपने जिन साहब-मित्र के दफ्तर में मुझे आपने काम दिलवाना चाहा था, वहाँ मुझे काम पर लगा दीजिए !

शशधर—कर सकोगे ?

सतीश—अब भी यदि न कर सकूँ, तो दोबारा मौसी का अन्न खाना ही मेरे लिए उपयुक्त दण्ड होगा।

१७

सुकुमारी—देखो, अब सतीश कैसे परिश्रम से काम-काज कर रहा है ! इतना बड़ा साहब बाबू, आजकल फटी-पुरानी, काली अचकन के ऊपर तह की हुई चादर डालकर, कैसे नियमित रूप से दफ्तर जाता है !

शशधर—बड़े साहब सतीश की खूब प्रशंसा करते हैं।

सुकुमारी—तुम यदि अपनी जमीदारी उसे दे बैठते, तो इतने दिनों में वह टाई-कॉलर-जूता-घड़ी खरीदकर ही उसे नीलाम पर चढ़ा देता! भाग्य से मेरी राय ले ली, तभी तो सतीश मनुष्य जैसा बन गया है!

शशधर—विधाता ने हम लोगों को बुद्धि नहीं दी, परन्तु स्त्री दी है, और तुम लोगों को बुद्धि दी है। उसी तरह साथ ही साथ मूर्ख पतियों को भी तुम लोगों के हाथों में समर्पित कर दिया है—लेकिन अंततः हम लोगों की ही जीत है!

'सुकुमारी—अच्छा, अच्छा—बहुत हो गया, मजाक मत करो! परन्तु सतीश के पीछे इतने दिनों तक जो रुपये खर्च किये गये, वे यदि आज होते तो···

शशधर—सतीश ने तो कहा है, किसी दिन वह सब चुका देगा!

सुकुमारी—वह जो चुकाएगा, वह सब मुझे पता है! वह तो बराबर ही इसी तरह की लम्बी-चौड़ी बातें करता रहता है! तुम शायद उसी भरोसे पर, राह ताकते हुए बैठे हो!

शशधर—अब तक तो भरोसा था! अब तुम यदि परामर्श दो, तो उसे विसर्जित कर दूं!

सुकुमारी—कर देने पर तुम्हारा अधिक नुकसान भी नहीं होगा! वह लो, तुम्हारे सतीश बाबू आ रहे हैं। नौकरी करने की अवधि से, एक दिन भी तो हम लोगों की चौखट पर नहीं चढ़े, ऐसी उनकी अकृतज्ञता है! मैं जाती हूँ।

(सतीश का प्रवेश)

सतीश—मौसी, भागना नहीं होगा! यह देखो, मेरे हाथ में अस्त्र-शस्त्र कुछ नहीं है—केवल थोड़े से नोट हैं।

शशधर—हिश्! यह तो एक गड्डी नोट हैं! यदि आफिस के रुपये हों, तो इस तरह से साथ लेकर घूमना अच्छा नहीं होता, सतीश!

सतीश—अब साथ लेकर नहीं घूमूंगा। मौसी के पांवों पर विसर्जित कर दिये। प्रणाम करता हूँ, मौसी! बहुत अनुग्रह किया था—उस समय, उसका हिसाब रखना पड़ेगा, यह सोचा भी नहीं था, फिर भी हिसाब-किताब में कुछ भूल-चूक हो सकती है। यह पन्द्रह हजार रुपये, गिन लो! तुम्हारे बच्चे के पुलाव की मात्रा में एक रेशे भर भी कमी न पड़े!

शशधर—यह क्या मामला है सतीश, यह रुपये कहाँ से पाये ?

सतीश—मैंने आज से छः महीने पहले टाट खरीद रखा था—इस बीच दाम चढ़ गये; उसी का मुनाफा मिला है !

शशधर—सतीश, यह तो जुआ खेलना है !

सतीश—खेल यहीं पर खत्म हो गया—और जरूरत नहीं पड़ेगी।

शशधर—अब इन रुपयों को तुम ले जाओ, मैं नहीं चाहता।

सतीश—तुम्हें तो दिये नहीं हैं, मौसाजी ! यह तो मौसी का कर्ज चुकाया है ! तुम्हारा कर्ज तो किसी जन्म में नहीं चुका सकूँगा !

शशधर—क्यों सुकू, ये रुपये…

सुकुमारी—गिनकर खजाची के हाथ में सौंप दो न—क्या वहीं पर बिखरे पड़े रहेंगे ?

शशधर—सतीश, खाना तो खा आये हो ?

सतीश—घर जाकर खाऊँगा !

शशधर—ऐं यह कैसी बात ! समय तो बहुत हो गया है। आज यहीं पर खा जाओ !

सतीश—अब खाना नहीं होगा, मौसाजी ! एक दफा चुका दिया; अन्न-ऋण को अब नये सिरे से नहीं ले सकूँगा !

(प्रस्थान)

सुकुमारी—बाप के हाथ से बचाकर, इतने दिनों तक उसे खिला-पहनाकर मनुष्य बनाया; आज हाथ में दो-पैसे आते ही, इसके तेवर देख रहे हो ? कृतज्ञता ऐसी ही होती है ! घोर कलियुग है न ! ?

१८

सतीश—बड़े साहब हिसाब के खाते कल देखेंगे। सोचा था, इस बीच सट्टे के मुनाफे के रुपये अवश्य मिल जाएँगे, लिखा-पढी पूरी कर रखूँगा—परन्तु बाजार गिर गया। अब जेल को छोड़कर दूसरी कोई गति नहीं है। बचपन से ही वहाँ जाने की तैयारी की गयी है।

परन्तु भाग्य को धोखा दूँगा। इस पिस्तौल में दो गोलियाँ भरी हुई हैं—

यही बहुत हैं ! नेली—नहीं, नही वह नाम नही, वह नाम नहीं—तब तो मैं मर ही नहीं सकूँगा ! यद्यपि वह मुझे प्यार करती है, मगर उस प्यार को भी मैं धूलिसात् कर आया हूँ। चिट्ठी में मैंने उसके सामने सब कुछ स्वीकार करते हुए लिख भेजा है। अब पृथ्वी पर, मेरे भाग्य में, जिसका प्यार बाकी रह गया है, वह मेरी यह पिस्तौल है, मेरे अन्त-काल की प्रेयसी, मस्तक पर तुम्हारा चुम्बन लेकर आँख बन्द करूँगा !

मौसाजी का यह बगीचा, मेरा ही तैयार किया हुआ है। जहाँ भी जितने भी दुर्लभ पौधे मिल सकते थे, सबको संग्रह करके लाया था। सोचा था, यह बगीचा एक दिन मेरा ही होगा ! भाग्य ने किसी और के लिए इन पौधों को लगवाया है, यह मुझसे उस समय नही कहा था—अब भले ही वह हो ! इस झील के किनारे, इस विलायती स्टीफानोटिस-लता के कुंज में, अपने इस जन्म की हवाखोरी समाप्त करूँगा—मृत्यु के द्वारा मैं इस बगीचे पर अधिकार कर लूँगा। इस जगह हवाखोरी के लिए आने का फिर किसी को साहस नही होगा !

मौसाजी को प्रणाम करके, पाँवों की धूल लेना चाहता हूँ ! पृथ्वी से उस धूलि को अपने साथ ले जा पाता, तो मेरी मृत्यु सार्थक हो जाती ! परन्तु, अब सन्ध्या के समय वे मौसी के पास हैं—अपनी इस हालत में मौसी से भेंट करने का मुझे साहस नही होता। विशेषकर, पिस्तौल भरी हुई है।

मृत्यु के समय सबको क्षमा करके, शान्ति से मरने का उपदेश शास्त्र में है; परन्तु मैं क्षमा नही कर सका ! मेरा यह मरने का समय नही है, मुझे अनेक सुखों की कल्पना, भोगों की आशाएँ थी—बचपन के कुछ वर्षों के जीवन मे ही, वे एक-एक करके सब टुकड़े-टुकडे होकर नष्ट हो गयी। मुझसे भी अधिक अयोग्य, मूर्ख लोगों के भाग्य में अनेक अयाचित सुख इकट्ठे हो गये हैं—और मेरे लिए, इकट्ठे होकर भी इकट्ठे नही हुए ! इसके लिए जो लोग उत्तरदायी हैं, उन्हें किसी तरह भी क्षमा नहीं कर सकूँगा—किसी तरह भी नही ! मेरे मृत्युकाल का अभिशाप, जैसे उनके पीछे-पीछे फिरता रहेगा—उन लोगों के सारे सुख को काना कर देगा ! उन लोगों की तृष्णा के जल को भाप बना देने के लिए, अपने दग्ध-जीवन के सम्पूर्ण दाह को मैं यहीं छोड़ जा रहा हूँ !

हाय ! प्रलाप ! सब कुछ प्रलाप ! अभिशाप की कोई शक्ति ही नही है ! मेरी मृत्यु, केवल मुझी को समाप्त कर देगी—और किसी के भी शरीर को हाथ

नही लगा सकेगी ! आह—उन लोगो ने मेरे जीवन को एकदम क्षार-क्षार कर दिया है, और मैं मरकर भी उन लोगों का कुछ नही कर पाया ! उन लोगों की कोई हानि नही होगी—वे लोग सुख से रहेगे, उन लोगो का दांत माँजने से आरम्भ करके मसहरी झाड़ने तक, कोई तुच्छ काम भी बन्द नही रहेगा—आज मेरे सूर्य-चन्द्र-नक्षत्रों का सम्पूर्ण आलोक, एक फूँक से बुझ गया है—मेरी नेली—ओह, वह नाम नही !

वह कौन है, वह ! हरेनऽ ! सन्ध्या के समय बगीचे मे घूमने निकला है। माँ-बाप से छिपकर, चोरी से, कच्चे अमरूद तोडने को आया है। उसकी आकांक्षा, इन कच्चे अमरूदों से अधिक ऊपर अभी नही चढी है—उस वृक्ष की नीची डाल पर ही उसका अधिकाश सुख फल रहा है ! पृथ्वी पर उसके जीवन का क्या मूल्य है ? वृक्ष का एक कच्चा अमरूद जैसा होता है, इस ससार में उसका कच्चा जीवन भी उसकी अपेक्षा क्या अधिक बड़ा है ? इसी समय यदि इसे तोड़ दिया जाए, तो जीवन की कितनी निराशाओं से उसे बचाया जा सकता है, इसे कौन कह सकता है ! और मौसी—हा ! हा ! एकदम लोटपोट होती रहेगी। आह !

ठीक समय है, ठीक स्यान है, ठीक व्यक्ति है ! हाय को और सँभाल नहीं पा रहा हूँ ! हाथ का क्या करूँ ? हाथ का क्या किया जाए ?

छड़ी लेकर सतीश बड़े जोर से पौधो पर सटासट प्रहार करने लगा। अन्त में अपने हाथ पर उसने जोर से आघात किया; परन्तु कोई वेदना अनुभव नही हुई। अन्त में जेब से पिस्तौल निकालकर, हरेन की ओर तेजी से बढ़ने लगा।

हरेन (चौंकते हुए)—यह कौन ! दादा है क्या ! तुम्हारे दोनों पाँव पड़ता हूँ दादा, तुम्हारे दोनों पाँव पड़ता हूँ—पिताजी से मत कह देना !

सतीश (चीत्कार करके)—मौसाजीऽ मौसाजीऽ ! दौड़ो, रक्षा करो, देर मत करो, अपने लड़के को बचाओ !

शशधर (दौड़ते हुए आकर)—क्या हुआ सतीश ! क्या हुआ ?

सुकुमारी (दौड़ते हुए आकर)—क्या हुआ, मेरे बच्चे को क्या हुआ ?

हरेन—कुछ भी नही हुआ, माँ ! कुछ भी नही—दादा ने तुम लोगों के साथ मजाक किया है !

सुकुमारी—यह कैसा बुरा मजाक है ! छिः छि. कैसा भद्दा मजाक ! देखो

तो सही—मेरी छाती अभी तक धड़क रही है ! सतीश ने शराब पी रखी है, शायद !

सतीश—भाग जाओ, अपने लड़के को लेकर फौरन भाग जाओ ! अन्यथा तुम लोगों की खैर नही है।

(हरेन को लेकर दौड़ते हुए सुकुमारी का भागना)

शशधर—सतीश, ऐसे उतावले न बनो ! मामला क्या है, बताओ ! हरेन को किसके हाथ से बचाने के लिए पुकारा था ?

सतीश—मेरे हाथ से, (पिस्तौल दिखाकर) यह देखो, मौसाजी !

(दौड़ते हुए विधुमुखी का प्रवेश)

विधु—सतीश, तू कहाँ पर क्या सर्वनाश कर आया है, बता तो सही ! ऑफिस के साहब, पुलिस को साथ लेकर हमारे मकान की खाना-तलाशी लेने को आये हैं। यदि भागना हो, तो इसी समय भाग जा। हाय भगवान् ! मैंने तो कोई पाप नही किया, मेरे ही भाग्य मे इतना दुःख क्यों हुआ !

सतीश—डरो नही—भागने का उपाय मेरे ही हाथ में है !

शशधर—तो क्या तुम…

सतीश—वही है मौसाजी—जो सदेह कर रहे हो वही ! मैंने चोरी करके मौसी का ऋण चुकाया है ! मैं चोर हूँ ! माँ, तुम सुनकर खुश होओगी, मैं चोर हूँ, मैं खूनी हूँ ! अब और नही रोना पड़ेगा—जाओ, जाओ, मेरे सामने से चली जाओ ! मुझे असह्य लग रहा है !

शशधर—सतीश, तुम मेरे सामने भी कुछ ऋणी हो, उसे भी चुका दो।

सतीश—बोलो, किस तरह चुकाऊँ ? मैं क्या दे सकता हूँ ? क्या चाहते हो तुम ?

शशधर—यह पिस्तौल दे दो !

सतीश—यह दे दो ! मैं जेल में ही जाऊँगा। जाए बिना मेरे पाप का ऋण-शोध नहीं होगा !

शशधर—पाप का ऋण, दण्ड के द्वारा नहीं चुकता, सतीश—कर्म के द्वारा ही चुकाया जाता है ! तुम निश्चित जानो, मेरे अनुरोध करने पर, तुम्हारे बड़े साहब तुम्हें जेल में नही देंगे ! अब आज से अपने जीवन को सार्थक करके जीओ और खुश रहो !

सतीश—मौसाजी, अब मेरे लिए जीवित रहना कितना कठिन है, उसे तुम नहीं जानते—मरना निश्चित जानकर, अपने अन्तिम सुख के आधार को भी मैं पाँव के नीचे से ठोकर मार कर हटा आया हूँ—अब क्या लेकर जीवित रहूँ ?

शशधर—फिर भी जीवित रहना होगा, मेरे ऋण का यही शोध है—मुझे धोखा देकर नहीं भाग सकोगे !

सतीश—तो वही करूँगा !

शशधर—मेरा एक अनुरोध सुनो, अपनी माँ को और मौसी को, हृदय से क्षमा कर दो।

सजीश—तुम यदि मुझे क्षमा कर सकते हो, तब इस संसार में ऐसा कौन हो सकता है, जिसे मैं क्षमा न कर सकूँ ! (प्रणाम करके) माँ, आशीर्वाद दो कि मैं सब कुछ सहन कर सकूँ—मेरे सब दोष-गुणों के लिए तुम लोगों ने मुझे जिस तरह ग्रहण किया है, ससार को मैं भी उसी तरह ग्रहण कर सकूँ !

विधु—बेटा, और क्या कहूँ ! माँ होकर, मैंने तुझे केवल स्नेह ही किया है, तेरा कोई भला नहीं कर सकी—भगवान तेरा भला करें ! दीदी के पास मैं एक बार तेरी ओर से क्षमा की भीख माँगे आती हूँ !

(प्रस्थान)

शशधर—तो आओ सतीश, मेरे घर में ही आज भोजन करके जाना होगा !

(लपकते हुए नलिनी का प्रवेश)

नलिनी—सतीश !

सतीश—क्या है, नलिनी ?

नलिनी—इसका क्या माने है ? यह चिट्ठी तुमने मुझे क्यों लिखी है ?

सतीश—माने जो भी समझो, वही ठीक है ! मैंने तुम्हें सताने के लिए चिट्ठी नहीं लिखी थी ! फिर भी मेरे भाग्य-क्रम से, सब कुछ उल्टा हो जाता है। तुम सोच सकती हो, मैं तुम्हारी दया का पात्र ही हूँ—परन्तु मौसाजी साक्षी है, मैंने अभिनय नहीं किया था। फिर भी यदि विश्वास न हो, तो प्रतिज्ञा की रक्षा करने का समय अब भी है !

नलिनी—क्या पागलों की तरह बक रहे हो ! मैंने तुम्हारा क्या अपराध किया था, जो तुमने निष्ठुर भाव से···

सतीश—जिसलिए मैंने यह संकल्प किया था, उसे तुम जानती हो नलिनी ! मैंने तो एक शब्द भी नहीं छिपाया, अब भी क्या मुझ पर तुम्हारी श्रद्धा है ?

नलिनी—श्रद्धा ! सतीश ! तुम्हारे ऊपर इसीलिए मैं नाराज होती हूँ ! श्रद्धा ! छिः छिः, श्रद्धा तो पृथ्वी पर अनेकों लोग अनेकों पर करते हैं । तुमने जो कार्य किया है, मैंने भी वही किया है—तुममें और स्वयं में कोई भेद नहीं रखा है । यह देखो, अपने सब गहने ले आयी हूँ—ये सब अभी तक मेरी सम्पत्ति नहीं हैं—ये सब माता-पिता के हैं ! मैं उनसे कहे बिना ले आयी हूँ, इनकी क्या कीमत हो सकती है, सो मैं कुछ नहीं जानती; परन्तु क्या इन्हें देकर तुम्हारा उद्धार नहीं होगा ?

शशधर—उद्धार होगा ! इन गहनों के साथ ही, और भी अमूल्य जो धन दे दिया है, उसी से सतीश का उद्धार होगा ।

नलिनी—शशधर बाबू हैं ? माफ कीजिएगा, जल्दबाजी मे आपको मैं···

शशधर—बेटी, उसके लिए लज्जा क्या है ! दृष्टि का दोष केवल हम जैसे बूढ़ों को ही नहीं होता—तुम लोगों की आयु में, हम जैसे प्रवीण व्यक्ति, एक पल भी ठहर ही नहीं पाते । सतीश, तुम्हारे ऑफिस के साहब आ गये हैं, ऐसा लगता है । मैं उनसे बातचीत कर आऊँ, तब तक मेरी ओर से अतिथि-सत्कार करो, बेटी ! यह पिस्तौल अब तुम्हारे जिम्मे ही रह सकेगी !

राजा का महल

कुसुमी ने जिज्ञासा की—दादा जी, इरू मौसी मे शायद खूब बुद्धि थी ?

—अवश्य थी, तुझ से अधिक थी !

चुप रह गयी कुसुमी। छोटा-सा एक दीर्घ-निःश्वास छोड़कर बोली—ओह, इसीलिए शायद तुम्हे इतना वश में कर लिया था ?'

—तूने तो उल्टी बात कह दी। बुद्धि से कोई किसी को वश मे कर सकता है ?

—तब ?

—अबुद्धि से करता है। सभी के भीतर एक जगह निवास करता रहता है एक बेवकूफ; उस जगह सबसे अनोखी बेवकूफी दिखाकर मनुष्य को वश में करना सहज होता है। तभी तो स्नेह को कहा जाता है—मन को लुभाना !

—किस तरह से करना पड़ता है, बोलो न !

—कुछ नही जानता। क्या होता है, बस वही जानता हूँ, और वही तो कहने जा रहा हूँ !

—अच्छा, बोलो !

—मुझ में एक कमी है, मैं हर बात से अवाक् रह जाता हूँ; इरू इसी जगह को पा बैठी थी ! वह मुझे बातों-ही-बातों मे एकदम भौंचक्का कर देती थी।

—किन्तु, इरू मौसी तो तुमसे छोटी थीं ?

—हाँ मगर कुछ वर्ष ही छोटी थी ! परन्तु मैं उसकी उम्र तक नही पहुँच पाता था, वह इस तरह से मुझे चलाती थी, जैसे मेरे दूध के दाँत भी न निकले हों। उसके सामने मैं खामोश ही बना रहता।

—बड़े मजे की बात है !

—मजा अवश्य है ! अपने किसी सात-मजिले राजमहल के सपनो से वह मुझे परेशान कर देती थी ! कोई ठिकाना नही मिलता था ! केवल वही जानती थी, उस राजमहल का पता ! मैं पढ़ता था, थर्ड नम्बर रीडर। मास्टर साहब से पूछा था, मास्टर साहब ने हँसकर मेरा कान पकडकर खीच दिया।

—जिज्ञासा की इरू से—राजमहल कहाँ है, बताओ न !

—वह दोनों आँखो को इतना बडा करके कहती—इस मकान में !

—मैं उसके मुँह की ओर चुपचाप देखता रहता, कहता—इसी मकान मे !

—किस जगह है, मुझे दिखा दो न !

—वह कहती—मन्तर जाने बिना कैसे देखोगे !

—मैं कहता—मन्तर मुझे बता दो न। मैं तुम्हें अपने कच्चे आम की बनी कटोरी दूँगा।

—वह कहती—मन्तर बताने की मनाही है।

—मैं जिज्ञासा करता—बता देने से क्या होगा ?

—वह केवल कहती—ओ—बाबा !

—क्या हो गया, सो पता ही नही चला। उसकी भाव-भंगिमा देखकर शरीर सिहर उठता ! निश्चित किया, किसी दिन जब इरू राजमहल मे जाएगी, उस समय मैं भी चुपचाप उसके पीछे-पीछे चला जाऊँगा ! परन्तु, वह राजमहल में तब जाती थी, जिस समय मैं स्कूल जाता था। एक दिन जिज्ञासा की—दूसरे समय मे जाने पर क्या होगा ?—फिर वही 'ओ ब्बाबा' ! जबरदस्ती करने का भी साहस नही होता था !

मुझे भौंचक्का बनाकर इरू स्वयं कुछ-एक नयी-नयी बातें सीखा करती थी। न जाने किस दिन, स्कूल से आते ही वह कह उठी—ओह, यह कैसा पेल्ला काण्ड है ?

परेशान होकर जिज्ञासा की—क्या काण्ड ?

राजा का महल

कुसुमी ने जिज्ञासा की—दादा जी, इरू मौसी में शायद खूब बुद्धि थी?

—अवश्य थी, तुझ से अधिक थी!

चुप रह गयी कुसुमी। छोटा-सा एक दीर्घ-निःश्वास छोड़कर बोली—ओह, इसीलिए शायद तुम्हें इतना वश में कर लिया था?'

—तूने तो उल्टी बात कह दी। बुद्धि से कोई किसी को वश में कर सकता है?

—तब?

—अबुद्धि से करता है। सभी के भीतर एक जगह निवास करता रहता है एक बेवकूफ; उस जगह सबसे अनोखी बेवकूफी दिखाकर मनुष्य को वश में करना सहज होता है। तभी तो स्नेह को कहा जाता है—मन को लुभाना!

—किस तरह से करना पड़ता है, बोलो न!

—कुछ नहीं जानता। क्या होता है, बस वही जानता हूँ, और वही तो कहने जा रहा हूँ!

—अच्छा, बोलो!

—मुझ में एक कमी है, मैं हर बात से अवाक् रह जाता हूँ; इरू इसी जगह को पा बैठी थी! वह मुझे बातों-ही-बातों में एकदम भौंचक्का कर देती थी।

—किन्तु, इरू मौसी तो तुमसे छोटी थीं ?

—हाँ मगर कुछ वर्ष ही छोटी थी ! परन्तु मैं उसकी उम्र तक नहीं पहुँच पाता था, वह इस तरह से मुझे चलाती थी, जैसे मेरे दूध के दाँत भी न निकले हों। उसके सामने मैं खामोश ही बना रहता।

—बड़े मजे की बात है !

—मजा अवश्य है ! अपने किसी सात-मंजिले राजमहल के सपनों से वह मुझे परेशान कर देती थी ! कोई ठिकाना नहीं मिलता था ! केवल वही जानती थी, उस राजमहल का पता ! मैं पढ़ता था, थर्ड नम्बर रीडर। मास्टर साहब से पूछा था, मास्टर साहब ने हँसकर मेरा कान पकड़कर खींच दिया।

—जिज्ञासा की इरू से—राजमहल कहाँ है, बताओ न !

—वह दोनों आँखों को इतना बड़ा करके कहती—इस मकान में !

—मैं उसके मुँह की ओर चुपचाप देखता रहता, कहता—इसी मकान में !

—किस जगह है, मुझे दिखा दो न !

—वह कहती—मन्तर जाने बिना कैसे देखोगे !

—मैं कहता—मन्तर मुझे बता दो न। मैं तुम्हें अपने कच्चे आम की बनी कटोरी दूंगा।

—वह कहती—मन्तर बताने की मनाही है।

—मैं जिज्ञासा करता—बता देने से क्या होगा ?

—वह केवल कहती—ओ—बाबा !

—क्या हो गया, सो पता ही नहीं चला। उसकी भाव-भंगिमा देखकर शरीर सिहर उठता ! निश्चित किया, किसी दिन जब इरू राजमहल में जाएगी, उस समय मैं भी चुपचाप उसके पीछे-पीछे चला जाऊँगा ! परन्तु, वह राजमहल में तब जाती थी, जिस समय मैं स्कूल जाता था। एक दिन जिज्ञासा की—दूसरे समय में जाने पर क्या होगा ?—फिर वही 'ओ ब्बाबा' ! जबरदस्ती करने का भी साहस नहीं होता था !

मुझे भौंचक्का बनाकर इरू स्वयं कुछ-एक नयी-नयी बातें सीखा करती थी। न जाने किस दिन, स्कूल से आते ही वह कह उठी—ओह, यह कैसा पेल्ला काण्ड है ?

परेशान होकर जिज्ञासा की—क्या काण्ड ?

वह बोली—नहीं बताऊँगी !

अच्छा ही करती—कानों से सुनता, क्या ही सुन्दर काण्ड है ! मन में बार-बार होता रहता—पेल्ला काण्ड !

इरू गयी थी हन्त-दन्त के मैदान में, जिस समय मैं सो रहा था। वहाँ पक्षी-राज घोड़े को चराता हुआ घूमता था, मनुष्य को समीप पाते ही वह एकदम लेकर उड़ जाता था—बादलों के बीच में।

मैं ताली बजाकर कह उठता—यह तो बड़े मजे की बात है !

वह कहती—मजा तो है ही ! ओ ब्बाबा !

अब क्या मुसीबत आ सकती थी, सो नहीं सुन सका। चुपचाप गयी थी, आँख बचाकर। इरू ने देखी थी परियों की घर-गृहस्थी, वह अधिक दूर नहीं थी। हमारी पोखर की पूर्व दिशा की ओर जो चीनी बरगद है, उसकी मोटी-मोटी डालियों के अन्धेरे की फाँक-फाँक में था। उन्हें फूल तोड़कर भेंट करके उसने वश में कर लिया था। वे फूल का मधु छोड़कर और कुछ नहीं खाती। इरू का परियों के घर जाने का एकमात्र समय था—दक्षिणी बरामदे में जिस समय नीलकमल मास्टर के पास मुझे पढ़ने के लिए बैठना होता था।

मैं इरू से जिज्ञासा करता—अन्य समय में जाने से क्या होता है ?

इरू कहती—परियाँ तितली बनकर उड़ जाती हैं !

और भी बहुत कुछ था, उसकी अवाक् कर देने वाली झोली में। परन्तु सबसे अधिक आकर्षित होता था, उसके अनदेखे राजमहल के बारे में ! वह जो एकदम हमारे ही मकान में है, शायद मेरे सोने के कमरे के बगल में ही। परन्तु मन्तर जो नहीं जानता ! छुट्टी के दिन, दोपहर के समय, इरू के साथ गया था आम के वृक्ष के नीचे। कच्चे आम तोड़ दिए थे, दे दी थी उसे अपनी बहुमूल्य पीपनी (घिसी हुई गुठली का बाजा)। उसने छिलके उतारकर, सोये के साग के साथ बैठकर खाये थे कच्चे आम—परन्तु मन्तर की बात उठाते ही कह उठती थी—ओ ब्बाबा !

उसके बाद मन्तर न जाने कहाँ चला गया, इरू अपने ससुराल चली गयी, मेरा भी राजमहल ढूँढ़ने का समय निकल गया—इस घर का रहा न ठौर-ठिकाना। दूर के राजमहल अनेक देखे हैं, परन्तु घर के पास का राजमहल—ओ ब्बाबा !

●

मान-भंजन

१

रमानाथ शील की तिमंजिली अट्टालिका की सर्वोच्च मंजिल के कमरे में, गोपीनाथ शील की पत्नी गिरिबाला रहती है। शयन-कक्ष के दक्षिणी द्वार के सामने, फूलों के गमलों में कितने ही बेले एवं गुलाब के फूलों के पौधे हैं। छत ऊँची दीवार से घिरी हुई है—बाहरी-दृश्य देखने के लिए, दीवार के बीच-बीच में, एक-एक करके ईंटों की फाँक दी गयी है। सोने के कमरे में सवस्त्रा एवं वस्त्रहीना—विशिष्ट विलायती नारी मूर्तियों के मढ़े हुए चित्र टँगे रहते हैं। परन्तु प्रवेश-द्वार के सामने वाले बड़े दर्पण पर षोडशी गृह-स्वामिनी का जो प्रतिबिम्ब गिरता है, वह दीवार की किसी भी तस्वीर की अपेक्षा सौन्दर्य में कम नहीं है!

गिरिबाला का सौन्दर्य अकस्मात् आलोक-रश्मि की तरह, विस्मय की तरह, निद्रा-भंगकारी चेतना की तरह, एकदम आश्चर्य की तरह आकर आघात करता है और एक ही आघात में अभिभूत कर देता है। इसे देखकर लगता है, ऐसा सुरूप देखने की तो कोई आशा ही नहीं थी! चारों ओर एवं हमेशा से जैसे रूप देखता आया हूँ, यह उससे बिलकुल भिन्न है।

गिरिबाला भी अपने लावण्य से स्वयं ही ऊपर से नीचे तक तरंगित होती रहती है। शराब का फेन जैसे प्याले से छलककर गिर पड़ता है, नवजीवन एवं नवीन सौन्दर्य उसी तरह उसके शरीर से छलककर गिरता रहता है—उसके वस्त्रों से, आभूषणों से, उसके बाँह हिलाने से, उसकी गर्दन की अदा से, उसके चचल चरणों के उद्दाम छन्द से, नूपुर-ध्वनि से, लहराते हास्य से, मँजी हुई भाषा से, आकर्षक कटाक्ष से एकदम उच्छृङ्खल की तरह उद्वेलित हो उठता है।

अपनी ही देह के इस उच्छलित मदिर रस से, गिरिबाला को एक नशा चढ गया है। प्रायः देखा जाता है कि एक कोमल रंगीन वस्त्र में अपना सम्पूर्ण शरीर लपेटे, वह छत पर अकारण ही चंचल होकर घूम रही है। जैसे मन के भीतर के किसी एक अश्रुत, अव्यक्त संगीत की ताल पर उसका अंग-प्रत्यंग नृत्य करना चाहता है। अपने अंगों को नाना भंगिमाओं से उत्क्षिप्त, विक्षिप्त, प्रक्षिप्त करके उनका अनुपम आनन्द है, वह जैसे अपने सौन्दर्य के चारों ओर अनेक लहरें उठाकर अपनी देह के उफनते हुए रक्त में अपूर्व पुलक की तरंगों का अनुभव करती रहती है। वह अचानक पौधे से पत्ते तोड़कर, दायीं भुजा को आकाश में उठाकर उन्हें हवा में छोड़ देती है—तब उसके कंगन बज उठते हैं, उसका आंचल खिसककर गिर पड़ता है; उसकी सुललित भुजा की भंगिमा पिंजरमुक्त अदृश्य पक्षी की भाँति, अनन्त आकाश में, बादलों की ओर उड़ती चली जाती है। हठात् वह गमले में से एक मिट्टी का ढेला उठाकर, अकारण ही मसलकर बिखरा देती है; पाँवों की अँगुलियों पर भार देकर उचक कर दीवार के छिद्रों में से अपार संसार को एक बार चट से देख लेती है—फिर घूमकर, आँचल घुमाती हुई चली आती है; आँचल में बंधा तालियों का गुच्छा झन-झन करके बज उठता है। कभी दर्पण के सामने जाकर, जूड़ा खोलकर फैला देती है और असमय में केश बाँधने बैठ जाती है; केश बाँधने के फीते से केशों को लपेटकर, उस फीते को अपने मोती जैसे दाँतों से दबाकर पकड़ लेती है; दोनों बाँहें ऊपर उठाकर माथे के पीछे वेणियों को खूब खींचकर जूड़ा बना लेती है। केश बाँधना समाप्त करने पर हाथ के सब काम पूरे हो जाते हैं—तब वह आलस्य से भरकर, कोमल बिछौने पर, आकाश से टपकी एक प्रकाश-किरण की भाँति पसर जाती है।

उसके सन्तान नहीं हैं, धनी घर में उसे कोई काम-काज भी नहीं है—वह उदासी भरे एकान्त में, प्रतिदिन अपने भीतर स्वयं ही उमड़-घुमड़ कर, अन्त में

स्वयं को और संभाल नही पाती। पति है, परन्तु वे उसकी सीमा के भीतर नही हैं। गिरिबाला बाल्य-काल से यौवन की सीमा लांघकर पूर्ण विकसित हो उठने पर भी, न जाने क्यों अपने पति की आँखों से ओझल हो गयी है।

बल्कि बाल्य-काल मे उसने अपने पति का प्यार पाया था। पति उस समय स्कूल से भागकर, अपने सोते हुए अभिभावकों से छुप कर, निर्जन दोपहर में, अपनी बालिका पत्नी के साथ प्रणयालाप करने आ जाते थे। एक घर मे रहते हुए भी, चिट्ठी लिखने के बढ़िया कागज पर पत्नी के साथ पत्र-व्यवहार करते थे। स्कूल के विशेष मित्रों को वे सब चिट्ठियाँ दिखाकर गर्व अनुभव करते थे। मामूली एवं कल्पित कारणों से दोनों में मान-मनौवल भी चलता-रहता था।

इसी बीच पिता की मृत्यु हो जाने पर, गोपीनाथ स्वयं घर के मालिक बन गये। लकड़ी के कच्चे तख्ते में जल्दी दीमक लग जाती है—कच्ची उम्र मे गोपीनाथ जब स्वाधीन हो गये, तो बहुतेरे जीव-जन्तु उनके कन्धे पर आ बैठे। और फिर क्रमश: घर के बजाए उनका अधिक समय बाहर व्यतीत होने लगा।

मालिक बनने की एक उत्तेजना होती है; मनुष्य के सामने मनुष्य का नशा भी बढ़ जाता है। बहुत से लोगों एवं इतिहास को प्रभावित करने वाले नेपोलियन की शक्ति का भी एक प्रबल आकर्षण था—एक छोटी-सी बैठक में बैठे इस कम उम्र मालिक को भी अपने छोटे से दल का नशा वैसा ही था। एक मामूली औरत के बन्धन की तुलना में अपने चारों ओर एक अभागी यार-मण्डली जुटा कर, उसके नेता बनना एवं उनके द्वारा वाहवाही प्राप्त करना बड़ा उत्तेजक होता है; उसके लिए अनेक व्यक्ति सम्पत्ति-नाश, ऋण, कलंक आदि सभी कुछ स्वीकार करने को तैयार हो जाते हैं।

गोपीनाथ अपने यार-सम्प्रदाय के अध्यक्ष बनकर बहुत मतवाले हो गये। वे प्रतिदिन यारी की नयी-नयी कीर्ति, नया-नया गौरव प्राप्त करने लगे; उनके दल के लोग कहने लगे—जनता मे यारी की अद्वितीय ख्याति का प्रचार गोपीनाथ ने किया है! उसी गर्व से, उसी उत्तेजना से, दूसरे सभी सुख-दुःख, कर्तव्यों आदि के प्रति अन्धा बनकर वह अभागा रात-दिन भँवर की भाँति चक्कर खाता घूमने लगा।

एक ओर अद्वितीय सौन्दर्य लेकर, अपने अन्त:पुर के सूने राज्य में, शयनगृह के सूने सिंहासन पर गिरिबाला विराजने लगी। वह स्वयं जानती थी कि विधाता

ने उसके हाथ में राज-दण्ड दिया है—मगर वह यह भी जानती थी कि दीवार के छिद्रों मे से जो संसार फैला हुआ दिखाई पड़ता है, उस ससार के किसी एक मनुष्य को भी वह बन्दी नही बना सकी।

गिरिवाला की एक शौकीन दासी है। उसका नाम सुधो अर्थात् सुधामुखी है। वह गीत गाती, नाचती, माला गूंथती, मालकिन के रूप की तारीफ करती एवं 'अरसिक के हाथ में ऐसा रूप निष्फल हो गया है'—कहकर आक्षेप करती थी। आजकल इस सुधो के न होने पर गिरिवाला का काम नही चलता। उलट-पलट कर वह अपनी मुखश्री, शारीरिक गठन, रग की उज्ज्वलता के सम्बन्ध मे उसकी बातें सुनती; बीच-बीच में उसका प्रतिवाद करती एव मन-ही-मन पुलकित होकर भी सुधो को झूठी और चापलूस कहकर झिडकना नही छोडती—*सुधो उस समय सौ-सौ शपथों के साथ अपनी बात को सच साबित करने बैठती।* गिरिवाला के लिए भी उस पर विश्वास करना कुछ खास कठिन नहीं होता।

सुधो गिरिवाला को गाना सुनाती–'किये हस्ताक्षर श्री चरणों मे।' इस गाने को गिरिवाला अपने आलता लगे, सुन्दर चरण-पल्लवों की तारीफ समझती एव एक पदलुण्ठित दास की तस्वीर उसकी कल्पना में उदित हो जाती। परन्तु हाय, दोनो श्रीचरणों की झांझन की झनकार से सूनी छत वह अपना जय-गान झंकृत करती हुई घूमती रहती, फिर भी कोई बेमोल बिका हुआ भक्त आकर हस्ताक्षर नही कर जाता।

गोपीनाथ ने जिसके लिए हस्ताक्षर कर दिये थे, उसका नाम लवग था। वह थियेटर में अभिनय करती थी। वह स्टेज पर आश्चर्यजनक रूप से बेहोश हो सकती थी। वह जिस समय नकियाते हुए स्वर मे हांफ-हांफ कर, खींच-खींच कर; टूटे-फूटे उच्चारण से 'प्राणनाथ'; 'प्राणेश्वर' कहकर पुकारती थी, उस समय महीन धोती के ऊपर वेस्टकोट पहने हुए, फुलमोजा-मडित दर्शक-मण्डली 'एक्सिलेण्ट', 'एक्सिलेण्ट' कहकर उछल पडती थी।

इस अभिनेत्री लवग की आश्चर्यजनक क्षमता का वर्णन गिरिवाला ने इससे पहले अनेक बार, अपने पति से सुना था। उस समय तक उसके पति पूरी तरह अलग नही हो गये थे। और किसी स्त्री के पास भी ऐसी कोई लुभावनी विद्या है, जो उसके पास नहीं है, इसे वह सहन नही कर सकती थी। बड़े कौतूहल से, उसने अनेक बार थियेटर देखने के लिए जाने की इच्छा प्रकट की थी, परन्तु पति

को किसी तरह भी सहमत नहीं कर पायी थी।

अन्त में एक दिन उसने रुपये देकर सुधो को थियेटर देखने भेज दिया। सुधो ने आकर, नाक-भौंह चढ़ाकर, राम-राम करते हुए अभिनेत्रियों के सिर पर झाड़ू मारने का एवं उनकी खराब शक्ल और नकली हाव-भाव से जिन पुरुषों को आकर्षण होता है, उनके सम्बन्ध में भी उसने यही दंड निश्चित किया। सुनकर गिरिबाला निश्चिन्त हो गयी।

परन्तु जब उसके पति सबन्धन तोड़ गये, तब उसके मन में सशय पैदा हुआ। सुधो की बात पर अविश्वास प्रकट करने पर, सुधो ने गिरि का शरीर छूकर बारम्बार कहा—कपड़ों से ढँकी लुकाठी जैसा तो उनका भद्दा एवं गंदा चेहरा है! गिरि उनकी आकर्षण शक्ति का कोई कारण नहीं समझ सकी एवं अपने ही अभिमान से मर्माहत होकर जलने लगी।

अन्त में एक दिन सन्ध्या के समय, सुधो को लेकर वह गुप्त रूप से थियेटर देखने गयी। निषिद्ध काम की उत्तेजना अधिक होती है। उससे हृदय के भीतर जो एक मीठा कम्पन हुआ था, उसी कम्पन के वेग से इस आलोकमय, लोकमय, वाद्य-संगीत मुखरित, दृश्य-पट-शोभित रंगभूमि ने उसकी आँखों में दुगुनी सुन्दरता धारण कर ली। अपने उस प्राचीर-वेष्ठित, निर्जन, निरानन्द अन्त.पुर से यह किस सुसज्जित, सुन्दर उत्सव-लोक में आ उपस्थित हुई है! सब स्वप्न जैसा लगने लगा।

उस दिन 'मान-भंजन' ऑपेरा का अभिनय हो रहा था। न जाने कब घण्टा बजा, वाद्य थम गये, चचल दर्शकगण पल-भर में स्थिर-निस्तब्ध होकर बैठ गये, रंगमंच की सम्मुखवर्ती आलोक माला उज्ज्वलतर हो उठी, पर्दा उठ गया, नटियों का एक दल गोपियाँ बनकर संगीत के साथ नृत्य करने लगा, दर्शकों की तालों और प्रशंसा से नाट्यशाला रह-रहकर ध्वनित-कंपित हो उठी—उस समय गिरिबाला की तरुण देह को रक्त-लहरी उन्माद से लहराने लगी। उस संगीत की तान से, आलोक और आभरण की छटा से एवं सम्मिलित प्रशंसा-ध्वनि से वह क्षणभर के लिए समाज, ससार सब कुछ भूल गयी! मन में सोचा—ऐसी जगह मैं आयी हूँ, जहाँ बन्धन-मुक्त, सौन्दर्यपूर्ण स्वाधीनता को किसी तरह की बाधा नहीं है!

सुधो ने बीच-बीच में आकर, डरे हुए स्वर से कानोकान कहा—'बहूरानी,

फौरन घर लौट चलिए ! दादाबाबू को पता चल जाने पर खैर नही होगी।' गिरिबाला ने उस बात पर कान नही दिया। उसके मन मे अब तनिक भी भय नही था।

अभिनय बहुत दूर तक बढ़ गया। राधा बुरी तरह रूठ गयी थी, उस मान-समुद्र मे कृष्ण किसी तरह भी थाह नही पा रहे थे; कितनी ही अनुनय-विनय, मान-मनौवल, रोआपीटी, किसी से भी कुछ नहीं हो रहा था। उस समय गर्व से भर कर गिरिबाला का वक्ष फूलने लगा। कृष्ण की इस परेशानी से, वह मन-ही-मन राधा होकर, स्वयं के असीम प्रताप को स्वयं ही अनुभव करने लगी। किसी ने उसे कभी भी इस तरह नही मनाया; वह अवहेलित, अपमानित परित्यक्ता स्त्री है; परन्तु फिर भी उसने एक अजीब मोह से निश्चय किया कि इस तरह के निष्ठुर भाव से रुलाने की क्षमता उसमे भी है। सौन्दर्य का कैसा अजेय प्रताप होता है, उसे उसने कानों से सुना था, अनुमान मात्र किया था—आज दीपको के प्रकाश में, गीत के स्वरों में, सुन्दर रंगमंच के ऊपर उसे सुस्पष्ट रूप मे प्रत्यक्ष देख लिया। नशे से उसका सम्पूर्ण मस्तिष्क भर उठा।

अन्त में पर्दा गिरा; गैसो का प्रकाश टिमटिमाने लगा; दर्शकगण प्रस्थान की तैयारी कर उठे; गिरिबाला मन्त्र-मुग्ध की भाँति बैठी रही। वह समझ रही थी कि अभिनय शायद अभी समाप्त नही होगा। यवनिका फिर उठेगी। राधिका के सामने श्रीकृष्ण की हार, इसके अतिरिक्त और कुछ शेष नही रहा। सुधो ने कहा—'बहूरानी, क्या कर रही हो ? उठो, अभी सब बत्तियाँ बुझा दी जाएँगी।'

गिरिबाला घनी रात मे अपने शयन-कक्ष में लौट आयी। कोई एक दिया टिमटिमा रहा था—घर में एक भी आदमी नहीं था, कोई आवाज नही थी—कमरे के कोने में सूनी शय्या के ऊपर एक पुरानी मसहरी; हवा से थोड़ी-थोड़ी हिल रही थी,अपना प्रतिदिन का ससार अत्यन्त भद्दा, नीरस एव तुच्छ जान पड़ने लगा। कहाँ है वह सौन्दर्यमय, आलोकमय, संगीतमय राज्य—जहाँ वह अपनी सम्पूर्ण महिमा को फैलाकर, ससार के केन्द्र-स्थल में विराज सकती है, जहाँ वह अज्ञात; अल्पज्ञात, तुच्छ, साधारण नारी मात्र नही है !

तब से उसने प्रति सप्ताह ही थियेटर जाना आरम्भ कर दिया। काल-क्रम से, उसका वह पहला मोह बहुत कुछ कम हो आया—अब वह नट-नटी के मुख

के फूहड़ रंग-ढंग, वास्तविक सौन्दर्य का अभाव, अभिनय की कृत्रिमता आदि सब कुछ देख सकी, परन्तु फिर भी उसका नशा नही छूटा ! रण-संगीत सुनकर योद्धा का हृदय जिस तरह नाच उठता है, रंगमंच का परदा उठते ही उसके हृदय के भीतर भी उसी तरह का आन्दोलन उपस्थित हो जाता। यह जो समस्त संसार से स्वतंत्र, खूबसूरत, शानदार, सुन्दर मंच, स्वर्ण-रेखा से चित्रित, चित्रों से सुसज्जित, काव्य एवं संगीत के इन्द्रजाल से माया-मण्डित, असंख्य मुग्ध दृष्टियों का आकर्षण केन्द्र, नेपथ्य-भूमि की गोपनीय द्वारा अपूर्व रहस्यमय, उज्ज्वल आलोक-माला से जगमगाता हुआ विश्वविजयिनी सौन्दर्य-महारानी के लिए ऐसा माया-सिंहासन और कहाँ है !

पहली बार, जिस दिन अपने पति को रंगभूमि में उपस्थित देखा, एवं जब गोपीनाथ किसी नटी के अभिनय से उन्मत्त होकर उच्छ्वास प्रकट करने लगा, तो पति के प्रति उसके मन में प्रबल अवज्ञा का उदय हुआ। उसने जर्जरित हृदय से अपने मन में सोचा, यदि कभी भी ऐसा दिन आए कि उसके पति उसके रूप से आकृष्ट होकर, पंख-जले पतंगे की भाँति उसके पदतल पर आ पड़े और वह अपने चरण-नख से ठोकर मार कर, अभिमान में भरकर चली जा सके, तभी उसका यह व्यर्थ रूप, व्यर्थ यौवन कुछ सार्थकता पा सकता है।

परन्तु वह शुभ दिन आएगा कब? आजकल गोपीनाथ के दर्शन पाना ही दुर्लभ हो गया है। वह अपने प्रमथमण्डता की आँधी के मुख पर धूलि-ध्वजा की भाँति एक दल बनाकर, घूमता-घूमता कहाँ चला गया है, इसका कुछ ठिकाना ही नही है !

एक दिन, चैत्र मास की वासन्ती पूर्णिमा मे, गिरिबाला वासन्ती रंग के कपड़े पहनकर, दक्षिणी वायु में आँचल उड़ाती हुई, छत पर बैठी हुई थी। यद्यपि घर में पति नही आते थे, फिर भी गिरि उलट-पलट कर प्रतिदिन नये-नये गहनों से स्वयं को सुसज्जित किये रहती थी। हीरा-मुक्ता के आभरण, उसके अंग-प्रत्यंग में एक उन्माद का संचार करते थे, झलमलाते हुए, रुनझुन बज कर उसके चारों ओर एक हिल्लोल उठाते थे। आज वह हाथ में बाजूबन्द एवं गले में एक चुन्नी और एक मुक्ता की कण्ठी पहने हुए थी, एवं बायें हाथ की कनिष्ठा अँगुली में एक नीलम की अँगूठी पहन रखी थी। सुधो पाँवों के पास बैठी थी, बीच-बीच में उसके निढाल कोमल कमल-से लाल पाँवों को हाथ से दाब

रही थी, एवं सच्चे प्रशंसा-भाव से कह रही थी—'अहा, बहूरानी, मैं यदि पुरुष होती, तो इन दोनों पाँवों को छाती पर रख कर मरती !' गिरिबाला गर्व सहित हँसकर उत्तर दे रही थी—'लगता है, छाती पर लिये बिना ही मरना होता—उस समय क्या इस तरह से पाँव फैला देती। ढेर मत बको ! तू आज वही गीत गा !'

सुधो उस चाँदनी की चादर से ढकी छत पर गाने लगी—

किये हस्ताक्षर श्रीचरणों में,
सब साक्षी हों वृन्दावन में !

उस समय रात्रि के दस बज रहे थे। मकान के सब लोग खान-पान आदि समाप्त करके सोने चले गये थे। इसी समय इत्र मलकर, चादर फहराता हुआ अचानक ही गोपीनाथ आ उपस्थित हुआ—सुधो जीभ काटकर, सात हाथ का घूँघट खींचकर; ऊर्ध्व-श्वास लेकर भाग गयी।

गिरिबाला ने सोचा, उसका दिन आ गया है। उसने मुँह उठाकर नही देखा। वह राधिका की भाँति कठोर मान मे भरकर, अटल बैठी रही। परन्तु दृश्य-पट नही उठा, मयूर-पख का मुकुट चरणों के समीप नही लोटा, किसी ने रागिनी मे नही गाया—'क्यो पूनम मे अन्धकार कर, मुख-शशि को तुम छिपा रही हो।' सगीत-विहीन, नीरस कण्ठ से गोपीनाथ ने कहा—'जरा ताली तो दो !'

ऐसी ज्योत्स्ना में, ऐसे बसन्त मे, इतने दिनों के वियोग के बाद, यह कैसा प्रथम सम्भाषण ! काव्य मे, नाटक मे, उपन्यास मे जो लिखा रहता है, वह आरम्भ से अन्त तक शायद सब झूठी बातें है ! अभिनय-मच पर प्रेम-गीत गाकर, पाँवो पर आकर लोटता हुआ जो गिर पड़ता है—और जिसे देखकर दर्शक का जी भर आता है, वही व्यक्ति बसन्त की रात्रि मे, घर की छत पर आकर अपनी अनुपमा युवती स्त्री से कहता है—'अजी, जरा ताली तो दो !' उसमें न तो रागिनी है, न प्रेम है, न कोई मोह है, और माधुर्य भी नहीं है—वह अनन्त अकिंचितकर है।

इसी समय दक्षिणी वायु, संसार के समस्त अपमानित कवित्व के मर्मान्तक दीर्घ-नि.श्वास की भाँति हू-हू करके बह गयी—गमले भरे ताजा खिले बेले के फूलों की गन्ध को पूरी छत पर बिखरा गयी। गिरिबाला के केशों का गुच्छा आँखों और मुँह पर आ पड़ा एव उसकी बासन्ती सुगन्ध इधर-उधर फैलने लगी।

गिरिबाला अपना सारा मान विसर्जित कर उठ खड़ी हुई।

पति का हाथ पकड़कर बोली—'ताली अभी देती हूँ। तुम घर में चलो!' आज वह रोएगी, रुलाएगी, अपनी सम्पूर्ण एकान्त कल्पनाओं को सार्थक करेगी, अपने सारे ब्रह्मास्त्रों का उपयोग कर विजयी होगी, यह उसने दृढ़-सकल्प कर लिया था।

गोपीनाथ ने कहा—'मैं अधिक देर नही रुक सकूँगा—तुम ताली दो!'

गिरिबाला ने कहा—'मैं ताली दूँगी और ताली के भीतर जो कुछ है, वह भी दूँगी—परन्तु, आज रात में तुम कहीं जा नहीं सकोगे!'

गोपीनाथ ने कहा—'यह नही होगा! मुझे कुछ खास काम है।'

गिरिबाला बोली—'तो मैं ताली नही दूँगी।'

गोपी बोला—'दोगी क्यों नही? कैसे नही देती हो, देखूँगा!'—कहकर उसने गिरिबाला का आँचल देखा, ताली नही थी। घर मे घुसकर, उसके शीशे के बक्स की दराज खोलकर देखा, उसमे भी ताली नही थी। उसके केश-विन्यास करने के बक्स को जबर्दस्ती तोड़कर खोल डाला; उसमे काजल, सिन्दूर की डिब्बी, केशों में बाँधने का फीता आदि विचित्र उपकरण थे—मगर ताली नही थी। उसने बिछौने हटाकर, गद्दी उठाकर, आलमारी तोडकर नष्ट कर दिये।

गिरिबाला पत्थर की मूर्ति की भाँति कठोर होकर, दरवाजा पकड़कर, छत की ओर देखती हुई खड़ी रही। व्यर्थ-मनोरथ गोपीनाथ क्रोध मे बड़बड़ाता हुआ आकर बोला—'ताली दो, कह रहा हूँ; अन्यथा अच्छा नही होगा!'

गिरिबाला ने उत्तर तक नही दिया। तब गोपी ने उसे कसकर पकड़ लिया एवं उसकी बाँह में से बाजूबन्द, गले में से कण्ठी, अँगुली में से अँगूठी छीनकर, उसे लात मारकर चला गया।

मकान में किसी की भी नींद भग नहीं हुई, मुहल्ले का कोई भी कुछ नहीं जान पाया, चाँदनी रात वैसी ही निस्तब्ध बनी रही, सर्वत्र जैसे अखण्ड शान्ति विराज रही थी। परन्तु हृदय की चीत्कार-ध्वनि यदि बाहर सुनाई पड़ती, तो वह चैत्र-मास की सुख की नींद भरी चाँदनी रात अचानक तीव्रतम शोर-गुल से दीर्ण-विदीर्ण हो जाती। इस प्रकार पूरी खामोशी से ऐसी हृदय-विदारक घटना घट सकती है!

अंततः वह रात भी कट गई। ऐसा पराभव, ऐसा अपमान, गिरिबाला सुधो

से भी नही कह सकी। मन में सोचा, आत्महत्या करके, इस अतुल रूप-यौवन को अपने ही हाथ से टुकडे-टुकडे करके तोड़-फेंककर वह अपने अनादर का प्रतिशोध लेगी! परन्तु उसी समय याद आया, उससे किसी का कुछ आएगा-जाएगा नहीं—दुनिया की कितनी हानि होगी, उसे कोई अनुभव भी नही करेगा। जीवन में भी कोई सुख नही है और मृत्यु से भी कोई सान्त्वना नही है!

गिरिबाला बोली—'मैं पिता के घर जा रही हूँ।' उसके पिता का घर कलकत्ते से दूर था। सभी ने मना किया, परन्तु उसने निषेध भी नहीं सुना, किसी को साथ भी नहीं लिया। इधर गोपीनाथ भी सदल-बल नौका-विहार को न जाने कितने दिनों के लिए कहाँ चला गया था, इसे कोई नही जानता था।

२

गान्धर्व थियेटर में गोपीनाथ प्रायः प्रत्येक अभिनय में उपस्थित रहता था। वहाँ 'मनोरमा' नाटक मे लवङ्ग मनोरमा बनती थी, एवं गोपीनाथ सदल-बल सामने की पंक्ति मे बैठकर, उसे उच्चस्वर से वाह-वाही देता एव स्टेज पर रुपयों की गड्डी फेंकता था। कभी-कभी शोर-शराबा कर दर्शकों की उपेक्षा का पात्र भी बन जाता था। फिर भी रंगभूमि के अध्यक्षगण उसे मना करने का साहस कभी नही करते थे।

अन्त मे एक दिन, गोपीनाथ नशे मे ग्रीन-रूम के भीतर प्रवेश करके भारी गोलमाल मचाया। किसी एक मामूली कारण से उसने स्वय को अपमानित अनुभव करके, एक नटी को बुरी तरह पीट दिया। उसकी चीख-पुकार एवं गोपीनाथ के गाली-गलौज से सम्पूर्ण नाट्य-शाला चकित हो उठी।

उस दिन अध्यक्षगण ने और सहन न कर पाकर, गोपीनाथ को पुलिस की सहायता से बाहर कर दिया।

गोपीनाथ इस अपमान का प्रतिशोध लेने को तुल गया। थियेटर वालों ने दुर्गा-पूजा के एक महीने पहले से ही, नये नाटक 'मनोरमा' का अभिनय खूब साज-सज्जा के साथ करने की घोषणा कर दी थी। विज्ञापन [illegible] कलकत्ता शहर को कागज से पाट डाला गया था; राजधानी को [illegible] ले[illegible] की माला पहना दी थी।

इसी समय गोपीनाथ उनकी प्रधान अभिनेत्री लवङ्ग को लेकर, बोट पर चढ़कर कहीं गायब हो गया; उसका फिर पता ही नहीं लग सका।

थियेटर वाले अचानक अथाह समुद्र में जा पड़े। कुछ दिन लवङ्ग के लिए प्रतीक्षा करके, अन्त में एक नयी अभिनेत्री को मनोरमा के पार्ट का अभ्यास करा लिया गया—इसी कारण उनके अभिनय का समय भी पिछड़ गया।

परन्तु विशेष हानि नही हुई। हॉल मे दर्शक समा ही नही पाते। सैकड़ों आदमी दरवाजे से ही लौट जाते। अखबारों में भी प्रशंसा की सीमा न रही।

वह प्रशंसा दूर देश मे गोपीनाथ के कानों में भी पड़ी। वह और ठहर नहीं पाया। विद्वेष एवं कौतूहल से भरकर वह अभिनय देखने के लिए आया।

पहली बार परदा उठने पर, अभिनय के प्रारम्भिक भाग में, मनोरमा दीन-हीन वेश में, दासी की भाँति अपनी ससुराल में रहती है—दबे-ढँके, विनम्र, संकुचित भाव से अपना काम-काज करती है—उसके मुंह से बात नही निकलती, और उसका मुँह भी अच्छी तरह दिखाई नही देता।

अभिनय के अन्तिम दृश्य में मनोरमा को पितृ-गृह भेजकर, उसका पति धन के लोभ से किसी एक लखपती की एकमात्र कन्या से विवाह करने को तैयार हो जाता है। विवाह के पश्चात् वासर-घर* में जब पति गौर से देखता है, तो लगता है—यह भी वही मनोरमा है, केवल उस दासी-वेश में नही है—आज वह राज-कन्या जैसी सज रही है, उसका निरुपम सौन्दर्य आभूषणो से, ऐश्वर्य से मण्डित होकर दसों दिशाओं में बिखरा पड रहा है। बचपन में मनोरमा अपने धनी पितृ-गृह मे से अपहृत होकर दरिद्र के घर में पलती थी। बहुत समय बाद जब उसके पिता को पता लगा, तब उसने कन्या को घर लाकर, उसके पति के साथ ही दुबारा नये समारोह से ब्याह दिया।

उसके बाद वासर-घर में मान-भन्जन शुरू हुआ।

परन्तु इसी बीच दर्शक-मण्डली में एक भारी गड़बड़ मच गयी। मनोरमा जब तक मलिन दासी-वेश मे घूंघट काढ़े हुए थी, तब तक गोपीनाथ चुपचाप देख रहा था। परन्तु जब आभूषणों से झलमल करके, लाल साड़ी पहनकर, माथे के घूंघट को हटाकर, रूप की तरग उठाती हुई वासर-घर मे खड़ी हुई एव एक अनिर्वच-

---

*सुहाग-रात का कमरा, जिसमें विवाह के दिन वर-वधू को रखा जाता है।

नीय गर्व से, गौरव से, गर्दन टेढ़ी कर उसने समस्त दर्शक-मण्डली एव विशेष रूप से सामने बैठे गोपीनाथ की ओर चकित विद्युत की भाँति अवज्ञापूर्ण तीक्ष्ण कटाक्ष फेंका—जिस समय समस्त दर्शक-मण्डली की प्रशसा और उत्साहपूर्ण तालियों से हॉल गूंजने लगा—उस समय गोपीनाथ सहसा उठकर दौड़ता हुआ 'गिरिवाला' —'गिरिवाला' कहकर चीत्कार कर उठा। वह दौडकर स्टेज के ऊपर छलांग मारकर चढने का प्रयत्न करने लगा—मगर बाजे वालों ने उसे पकड़कर फेंक दिया।

इस आकस्मिक रस-भंग से नाराज और उत्तेजित होकर दर्शकगण अँग्रेजी में, बाग्ला में 'दूर हटाओ', 'बाहर निकाल दो' कहकर चिल्लाने लगे।

गोपीनाथ पागल की भाँति फटे-गले से चीखने लगा—'मैं उसका खून करूँगा उसका खून करूँगा!'

पुलिस आकर गोपीनाथ को पकड़कर, खींचकर बाहर ले गयी। सम्पूर्ण कलकत्ता शहर के दर्शक, दोनों आँखें भरकर गिरिबाला का अभिनय देखने लगे; केवल गोपीनाथ को वहाँ स्थान नहीं मिला।

●

तपस्विनी

वैशाख प्रायः समाप्त हो आया था। पहले पहर की रात उमस रही थी, बाँस के पेड़ों के पत्ते तक नहीं हिलते थे, आकाश के तारे जैसे सिरदर्द की वेदना की भाँति दब-दबकर कह रहे थे, रात में तीन बजे के समय झिर-झिर करके जरा-सी हवा चली। षोडशी सूने फर्श पर, खुली हुई खिड़की के नीचे सो रही थी, एक कपड़े में लिपटा हुआ टीन का बक्स, उसके सिर का तकिया था। साफ जान पड़ता था कि बड़े उत्साह के साथ वह किसी कठिन तपस्या की साधना कर रही थी।

प्रतिदिन सुबह चार बजे के समय उठकर स्नान करके षोडशी मन्दिर में जा बैठती। पूजा-पाठ करते हुए दोपहर हो जाता। उसके बाद विद्यारत्न महाशय आते, तो उसी कमरे में बैठकर वह उनसे गीता पढती। संस्कृत उसने थोड़ी-थोड़ी सीख ली थी। शंकर के वेदान्त-भाष्य एवं पातंजलि दर्शन वह मूल ग्रन्थ से पढेगी, यही उसकी प्रतिज्ञा थी। उसकी उम्र तेईस वर्ष होगी।

घर गृहस्थी के काम से षोडशी बहुत दूर रहती है—ऐसा कैसे सम्भव हुआ, उसके कारण को लेकर ही यह कहानी है।

अपने नाम के साथ माखनबाबू के स्वभाव की कोई समानता नहीं थी। उनके मन का निश्चय गलाना बड़ा कठिन था। उन्होंने निश्चय किया था कि जितने दिनों तक उनका लड़का वरदा बी० ए० पास नहीं कर लेता, तब तक अपनी बहू से वह दूर ही रहेगा। परन्तु पढ़ाई-लिखाई वरदा से ठीक मेल नहीं खाती थी, वह शौकीन मनुष्य था। जीवन-निकुंज के मधु-संचय के सम्बन्ध में मधुमक्खी के साथ उसका मिजाज मिलता था, परन्तु छत्ते का निर्माण करते समय जिस परिश्रम की आवश्यकता होती है, वह उसे बिल्कुल सहन नहीं था। बड़ी आशा की थी, विवाह के बाद से मूंछों पर ताव देकर, वह कुछ अधिक आराम में रहेगा, एवं उसके साथ-ही-साथ सिगरेटों को बाहरी ड्योढ़ी में ही फूंकने का समय आ जाएगा। परन्तु काल-क्रम से, विवाह के बाद उसके कल्याण की इच्छा, उसके पिता के मन में और भी अधिक प्रबल हो उठी।

स्कूल के पंडित जी ने वरदा का नाम रखा था, गौतम मुनि। कहने की आवश्यकता नहीं है कि यह नाम वरदा के ब्रह्मतेज को देखकर नहीं रखा गया था। किसी प्रश्न का जवाब न पाने के कारण ही वे उसे मुनि कहते थे, और जब जवाब देता भी था, तो उसमें ऐसा कुछ गव्य पदार्थ पाया जाता, जिससे पंडित जी की राय में उसकी गौतम उपाधि सार्थक होती थी।

माखन ने हेडमास्टर से पता लगाकर मालूम किया, स्कूल के साथ ही घर के लिए भी शिक्षक—इस तरह बड़े-बड़े दो ऍंजिन आगे-पीछे जोड़ देने पर ही वरदा की सद्गति हो सकती है। अधम लड़कों को भी जो परीक्षा-सागर से पार करा सकें, ऐसे सभी सुप्रसिद्ध मास्टर, रात के दस-साढ़े दस बजे तक वरदा के संग लगे रहने लगे। सत्य-युग में सिद्ध प्राप्त करने के लिए बड़े-बड़े तपस्वियों ने जो तपस्या की थी, वह अकेले की तपस्या थी; परन्तु मास्टरों के साथ मिलकर वरदा की जो यह सामूहिक तपस्या थी, यह उनकी अपेक्षा बहुत अधिक कठिन थी। उस जमाने की तपस्या का प्रधान संकट अग्नि के कारण था; अब इस परीक्षा-तापस के कष्ट का प्रधान कारण अग्नि शर्मा थे। उन्होंने वरदा को बहुत जलाया। इसीलिए इतने दुःख के बाद, जब वह परीक्षा में फेल हुआ, तो उस समय उसे यही सान्त्वना हुई कि उसने सारे नामी मास्टरों के सिर नीचे कर दिये हैं। परन्तु, ऐसी असामान्य निष्फलता पर भी माखनबाबू ने पतवार नहीं छोड़ी। दूसरे वर्ष में मास्टरों का एक और दल नियुक्त हुआ, उनके साथ यह तय

हुआ कि वेतन तो वे पाएँगे ही, उसके बाद यदि वरदा फर्स्ट-डिवीजन में पास हो सका, तो उन्हें बख्शीश भी मिलेगी। इस बार भी वरदा ठीक समय पर फेल होता; परन्तु इस आसन्न दुर्घटना को थोड़ी सी विचित्रता द्वारा सरस करने के अभिप्राय से; इम्तहान से ठीक पहली रात को, मुहल्ले के कविराज से परामर्श करके, उसने एक तगड़े जुलाब की गोली खा ली एवं धन्वन्तरि की कृपा से, फेल होने के लिए उसे सीनेट हॉल तक नही दौड़ना पड़ा, घर बैठे ही काम अच्छी तरह निबट गया। रोग अच्छे स्तर के समाचार-पत्र की भांति इस तरह से ठीक दिन, ठीक समय में प्रकट हुआ, कि माखन निश्चित रूप से समझ गए कि यह काम बिना कोशिश के हो ही नहीं सकता था। मगर इस सम्बन्ध में कोई बात न करके, उन्होंने वरदा से कहा कि तीसरी बार परीक्षा के लिए उसे तैयार होना पड़ेगा, अर्थात् उसके सश्रम कारावास की मियाद और एक वर्ष बढ गयी।

आखिर रूठकर वरदा ने एक दिन खूब ढेर सारा भात खा लिया। उसका यही फल हुआ कि सन्ध्या के समय का भोजन उसे और भी अधिक खाना पड़ा। माखन से वह बाघ की भाँति डरता, फिर भी जान पर खेल कर, वह उनके पास जाकर बोला—'यहाँ रहने पर मेरी पढ़ाई-लिखाई नही होगी!'

माखन ने जिज्ञासा की—'कहाँ जाने पर वह असंभव काम संभव हो सकेगा?'

वह बोला—'विलायत में!'

माखन ने उसे संक्षेप मे समझाने की चेष्टा की कि इस सम्बन्ध में उसका जो गोल (शून्य) है वह भूगोल में नही, दिमाग में है। अपने पक्ष के प्रमाण के रूप में वरदा बोला—उसी का एक सहपाठी, एन्ट्रेन्स स्कूल की तृतीय श्रेणी की अन्तिम बेंच से एकदम छलाँग लगाकर, विलायत का एक बड़ा इम्तहान मार लाया है। माखन बोले कि उसे विलायत भेजने में उन्हें कोई आपत्ति नही है, परन्तु उससे पहले बी० ए० पास कर लेना चाहिए।

यह भी तो बड़ी मुश्किल है! बी० ए० पास किये बिना भी वरदा ने जन्म लिया है, बी० ए० पास किये बिना भी वह मरेगा, तो जन्म-मृत्यु के बीच में न जाने कहाँ का यह 'बी० ए० पास' विन्ध्य-पर्वत की भाँति खड़ा होकर ठहर गया है? उतरते-चढ़ते सभी बातों को इस जगह पहुँचते ही ठोकर खानी पड़ेगी? कलिकाल में अगस्त मुनि क्या कर रहे हैं? वे भी क्या जटा मुड़वा कर बी० ए० पास करने में लगे हैं?

दीर्घ निःश्वास छोड़कर वरदा बोला, 'बार-बार कोशिश की, तीन बार हो चुका, परन्तु इस बार अन्तिम है।' एक बार फिर किताबों में पेंसिल से निशान लगाकर, कुञ्जी-पुस्तकों को आले में से नीचे उतार कर, वरदा कमर कसने के लिए तैयार हो रहा था; इसी समय एक धक्का लगा, उसे वह बिल्कुल नहीं सह सका। स्कूल जाने के समय गाड़ी की खोज करने पर उसे खबर मिली कि स्कूल जाने की गाड़ी और घोड़े को माखन ने बेच डाला है। उन्होंने कहा—'दो वर्ष नुकसान हुआ; इस खर्च को और कब तक खींचूँ?' पैदल स्कूल जाना वरदा के लिए कुछ कठिन नहीं था, परन्तु लोगों के सामने इस अपमान की वह क्या कैफियत देगा?

अन्त में बहुत कुछ विचारने के बाद, एक दिन सुबह के समय उसके दिमाग मे आया कि इस ससार मे मृत्यु के अतिरिक्त एक और मार्ग भी खुला हुआ है, जो 'बी० ए० पास' के अधीन नही है, एव जिसके लिए पत्नी, पुत्र, धन, जन सभी अनावश्यक है। वह और कुछ नहीं है, संन्यासी हो जाना है! इस विचार के ऊपर कुछ दिनों तक गुप्त रूप से उसने बहुत-सी सिगरेटों का धुंआ लगाया; उसके बाद एक दिन देखा गया कि पढ़ने के कमरे के फर्श उसकी कुजी-पुस्तकों के फटे हुए टुकडे, परीक्षा-दुर्ग के भग्नावशेष की भांति बिखरे पड़े हुए थे—और परीक्षार्थी का पता नही था। टेबल पर एक कागज का टुकड़ा, टूटे हुए कांच के गिलास के नीचे दबा हुआ था, उसमे लिखा था—

'मैं संन्यासी हूँ—मुझे अब गाड़ी की आवश्यकता नही पड़ेगी।

—श्रीयुत वरदानन्द स्वामी।'

माखनबाबू ने कुछ दिनों तक कोई खोज ही नही की। उन्होंने सोचा, वरदा को अपनी ही गरज से लौटना होगा, पिंजड़े का दरवाजा खुला रखने के अतिरिक्त और किसी आयोजन की आवश्यकता नही है। दरवाजा खुला ही रहा, केवल वे कुंजी-पुस्तकों के फटे हुए टुकड़े साफ हो गये—और सभी ठीक था। घर के कोने में, उसी पानी की सुराही के ऊपर, कोना-टूटा गिलास उल्टा रखा रहा। तेल के दाग से मैली चौकी के आसन के स्थान पर, खटमलों के उत्पात एव पुरानेपन की त्रुटि को दूर करने के लिए पुराने एटलस का मोटा कागज। एक कोने में एक खाली बक्स के ऊपर एक टीन की पेटी पर वरदा का नाम लिखा था। दीवार मे आले पर एक जिल्द-उखड़ी अँग्रेजी-बाग्ला डिक्शनरी,

हरप्रसाद शास्त्री के भारत के इतिहास के कुछ पन्ने एव मुखपृष्ठ पर रानी विक्टोरिया की तस्वीर छपी कुछ कॉपियाँ थी। इन कॉपियों को झाडकर देखने पर, इनमें से अधिकाश मे से अगडेन-कम्पनी की सिगरेट बक्स-वाहिनी विलायती अभिनेत्रियो की तस्वीरें झर पड़ेगी। सन्यास आश्रम के समय, मार्ग मे सान्त्वना के लिए इन सबको वरदा ने साथ नही लिया, इसी से समझा जा सकता था कि उसका मन शान्त नही था।

हमारे नायक की तो यह दशा थी। उधर नायिका पोडशी, उस समय कुल मिलाकर त्रयोदशी (तेरह वर्ष की) थी। घर मे अब तक सभी लोग उसे बच्ची कहकर पुकारते थे। ससुराल में भी वह अपने इस शैशव की ख्याति लेकर आयी थी; इसीलिए उसके सामने ही वरदा के चरित्र की चर्चा करने मे, घर की दासियाँ तक चुप नहीं रहती थी। सास चिर-रुग्ण थी—पति के किसी भी फैसले के ऊपर कोई बात कहने की शक्ति उनमे नही थी; इतना ही क्यो, मना करने में भी उन्हें डर लगता था। बुआ-सास की भाषा खूब नोकीली थी, वरदा के बारे मे खूब कड़ी-कडी बातें, खूब बना-बनाकर कहती थी! उसका एक विशेष कारण था। दादा के जमाने से, खानदानी प्रेतो के सामने वश की लडकियो की बलि देना, इस घर की एक प्रथा थी। यह बुआ जिसके हिस्से मे पड़ी, वह एक प्रचण्ड गाँजाखोर था। उसका एकमात्र गुण यही था कि वह अधिक दिन जीवित नही रहा। इसलिए प्यार से भर कर पोडशी की वे जिस समय मुक्ताहार के साथ तुलना करती, उस समय अन्तर्यामी जानते थे कि इस फालतू मुक्ताहार के लिये जो आक्षेप था, वह अकेली पोडशी के लिए नहीं था।

इस मामले में मुक्ताहार को भी वेदना का अनुभव होता है, इस बात को सभी लोग भूल गये थे। बुआ कहती—'दादा, क्यों इतने मास्टर-पडितों के पीछे खर्च कर रहे हैं, सो समझ मे नही आता। लिखाया-पढ़ाया तो जा सकता है, परन्तु वरदा कभी भी पास नही हो सकेगा। नही हो सकेगा, यह विश्वास पोडशी का भी था, परन्तु वह एकाग्र मन से कामना करती थी कि किसी तरह से भी पास होकर वरदा अन्तत. बुआ के मुँह पर झाड़ू मार दे। वरदा के पहली बार फेल होने के बाद माखन जब दूसरी बार मास्टरों का व्यूह बाँधने की चेष्टा में लगे, तो बुआ ने कहा,—'धन्य है, दादा को! मनुष्य सँभलना भी तो सीखे।' उस समय पोडशी, दिन-रात केवल यही असम्भव कल्पना करने लगती कि वरदा इस बार

अगर कही अचानक ही अपनी किसी गुप्त शक्ति को प्रकट करके, इस अविश्वासी ससार को स्तम्भित कर दे—वह प्रथम श्रेणी मे, सर्व प्रथम से भी और बहुत बड़ा होकर पास करे—इतना बड़ा कि स्वय लाट साहब सवार भेजकर, भेंट करने की इच्छा से उसे बुलवाएँ। इसी समय कविराज की रामबाण गोली, ठीक परीक्षा के दिन, सिर के ऊपर युद्ध के बम की तरह आ पड़ी। वह भी कुछ कम अच्छा न होता, यदि लोग सन्देह न करते। बुआ ने कहा—'लड़के की अक्ल इस ओर नही है, उस ओर है।' लाट साहब का बुलावा नही आया। षोडशी ने सिर झुका कर, लोगो के हँसी-मजाक को सहन किया। ठीक समय पर दस्त लगने का नाटक देखकर, उसके मन मे भी सन्देह नही उत्पन्न हुआ, ऐसी बात नही कही जा सकती।

इसी समय वरदा फरार हो गया। षोडशी ने बड़ी आशा की थी कि कम-से-कम इस घटना को भी तो घर के लोग दुर्घटना समझकर अनुताप-परिताप करेंगे। परन्तु उन लोगों की गृहस्थी ने वरदा के चले जाने की भी कोई कीमत नही समझी। सभी ने कहा—'अजी, देखते रहो न, आ ही जाएगा'! षोडशी मन-ही-मन कहती—'कभी भी नही! हे भगवान, लोगो की बात झूठी हो! घर के लोगो को हाय-हाय करनी पडे!'

इस बार विधाता ने षोडशी को वर दिया, उसकी कामना सफल हुई! एक महीना गया, वरदा नही दिखाई दिया, किन्तु फिर भी किसी के मुँह पर उद्वेग का कोई चिह्न दिखाई नही पडा। दो महीने गये, तब माखन का मन कुछ चंचल हुआ, परन्तु बाहर से उसने कुछ प्रगट नही किया। बहूरानी से भेंट होने पर उसके मुँह पर कही विषाद के बादलों का संचार दिखाई न पडे, यह सोच-कर बुआ का मुँह एकदम ज्येष्ठ-मास के अनावृष्टि के आकाश जैसा सपाट हो गया। सदर दरवाजे के पास किसी आदमी को देखते ही, षोडशी चौंक उठती थी—आशंका होती, कही उसके पति लौट न आएँ। इस तरह से जब तीसरा महीना भी कट गया, तब—'लडका घर के सब लोगों को व्यर्थ परेशान कर रहा है—कहकर बुआ ने नालिश शुरू कर दी। यह भी अच्छा था, अवज्ञा की अपेक्षा नाराज होना अच्छा है! परिवार के भीतर धीरे-धीरे भय और दु:ख घनी-भूत होने लगा।

खोज करते-करते क्रमश. जब एक वर्ष कट गया, तब माखन ने वरदा के

साथ जो अनावश्यक कठोर आचरण किया था, उस बात को बुआ ने भी कहना शुरू कर दिया। जब दो वर्ष बीत गये, तब मुहल्ले के पडोसी भी कहने लगे—वरदा का पढ़ाई-लिखाई में मन अवश्य नहीं लगता था, परन्तु वैसे आदमी बड़ा भला था। वरदा की जुदाई का समय जितना ही लंबा होने लगा—उसका स्वभाव बड़ा निर्मल था; इतना ही क्यों, वह तम्बाकू तक नहीं पीता था—यह अन्धविश्वास मुहल्ले के लोगों के मन में बद्धमूल होने लगा। स्कूल के पंडित जी ने स्वयं कहा—इसलिए तो उन्होंने वरदा का नाम गौमत मुनि रखा था, उसी समय से उसकी बुद्धि, वैराग्य की ओर एकदम आर्कापित होने लगी थी। बुआ प्रतिदिन ही कम-से-कम एक बार, अपने भाई के जिद्दी स्वभाव के ऊपर दोषारोपण करती हुई कहने लगीं—'वरदा को इतना पढ़ाने-लिखाने की आवश्यकता ही क्या थी! रुपयों का तो अभाव था नहीं। कुछ भी कहो भाई, परन्तु *उसके शरीर में कोई दोष नहीं था। अहा लड़का मेरा सोने का टुकड़ा था!'* उसके पति-पतिव्रता के आदर्श थे, एवं संसार के सभी लोगों ने उनके प्रति अन्याय किया, सब दुःखों के बीच इसी एक सान्त्वना से, इसी एक गौरव से षोडशी का मन भरा रहने लगा।

इधर पिता का व्यथित हृदय, अपने सम्पूर्ण स्नेह को दोगुना करके, षोडशी के ऊपर आ पडा। वह किस तरह सुखी रहे, माखन की यही एकमात्र चिन्ता हो गयी। उनकी बड़ी इच्छा रहती, षोडशी उनसे ऐसी कुछ फरमाइश करे, जो दुर्लभ हो—बहुत कष्ट करके, नुकसान करके, वे उसे थोड़ा-सा खुश कर सकने पर जैसे बच जाएँगे—उन्होंने ऐसा त्याग स्वीकार करना चाहा; जो उनके लिए प्रायश्चित्त जैसा हो सके।

२

षोडशी पन्द्रहवें वर्ष में पड़ी। घर के भीतर अकेले बैठे-बैठे, जब-तब उसकी आँखों में पानी भर आता था। चिरपरिचित संसार उसे चारों ओर से जैसे लपेटे रखता था, उसके प्राण हाँफ उठते थे। उसके घर की प्रत्येक वस्तु, उसके बरामदे की प्रत्येक रेलिंग, छज्जे के ऊपर जो फूलों के गमले रखे हुए थे, वे सभी जैसे भीतर-ही-भीतर उसे उदास करते रहते थे। पग-पग पर घर की

मराठें, वस्त्र टाँगने की खूंटियाँ, आल्मारियाँ—उसके जीवन के सूनेपन की लज्जा-
उनक बहूरानी बहनी थी; इन सारे चीज-वस्तुओं पर उसे क्रोध हो आता था।
गृहस्थी में उसके एकमात्र आराम की जगह थी, खिड़की का कोना जो संसार
उसमें बाहर था, वहीं उसका सबसे अधिक अपना था, क्योंकि उसका 'घर हो
गया था बाहर, बाहर हो गया था घर !'

एक दिन, जब दस बज रहे थे—अन्तःपुर में जिस समय कटोरी, कठौत,
थाली, बेंत की डलिया, टोकरी, सिल-लोढ़ा और पनडब्बे की भीड़ जमा होकर,
गृहस्थी का वेग प्रबल हो उठा था—उसी समय संसार की सारी व्यस्तताओं से
स्वतन्त्र होकर, खिड़की के पास खड़ी षोडशी का उदास मन, शून्य आकाश की
ओर उड़ान भर रहा था। हठात् 'जय विश्वेश्वर' कहकर पुकारता हुआ एक
संन्यासी, उनके गेट के पास वाले पीपल के वृक्ष के नीचे होता हुआ बाहर
निकल आया। षोडशी की सारी शिराएँ मोड़ खिंची हुई वीणा की भाँति, चरम-
व्याकुलता में बज उठीं। वह दौड़ी हुई बुआ के पास जाकर बोली—'बुआ, इन
संन्यासी महाराज के भोग की तैयारी करो।'

यही सब शुरू हो गया। संन्यासियों की सेवा षोडशी के जीवन का लक्ष्य
बन गयी। इतने दिनों के बाद श्वसुर को बहू पर अहसान करने का मार्ग
मिला। माधव ने उत्साह दिखाते हुए कहा—मकान में एक अच्छी-सी अतिथि-
शाला खोलनी चाहिए। माधवबाबू की आमदनी कुछ समय से कम हो रही
थी, परन्तु वे बारह रुपये सैकड़े के ब्याज पर उधार रुपये लेकर इस सत्कर्म में
लगाने लगे।

संन्यासी भी ढेरों जुटने लगे। उनमें अधिकांश सच्चे नहीं हैं, इस विषय में
माधव को कोई सन्देह नहीं था, परन्तु बहूरानी के सामने उसका आभास देने की
सामर्थ्य कहाँ थी ! विशेषकर वे जटाधारी जिस समय भोजन-विश्राम और
सुविधाओं की छोटी-मोटी त्रुटियों को लेकर गाली देते, अभिशाप दे उठते, उस
समय किसी-किसी दिन इच्छा होती कि उन्हें गर्दनिया दे
जाए। परन्तु षोडशी का मुँह देखकर, उनके पाँव भी पक
उनका कठोर प्रायश्चित।

संन्यासी के आते ही, पहले
बुआ उसे ले बैठती, षोडशी दर

खाटें, वस्त्र टाँगने की खूँटियाँ, आल्मारियाँ—उसके जीवन के सूनेपन की लज्जा-जनक कहानी कहती थीं; इन सारे चीज-वस्तुओं पर उसे क्रोध हो आता था।

गृहस्थी मे उसके एकमात्र आराम की जगह थी, खिड़की का कोना जो ससार उससे बाहर था, वही उसका सबसे अधिक अपना था, क्योंकि उसका 'घर हो गया था बाहर, बाहर हो गया था घर !'

एक दिन, जब दस बज रहे थे—अन्त.पुर में जिस समय कटोरी, कठौत, थाली, बेंत की डलिया, टोकरी, सिल-लोढ़ा और पनडब्बे की भीड जमा होकर, गृहस्थी का वेग प्रबल हो उठा था—उसी समय ससार की सारी व्यस्तताओं से स्वतन्त्र होकर, खिड़की के पास खड़ी षोडशी का उदास मन, शून्य आकाश की ओर उड़ान भर रहा था। *हठात् 'जय विश्वेश्वर' कहकर पुकारता हुआ एक सन्यासी, उनके गेट के पास वाले पीपल के वृक्ष के नीचे होता हुआ बाहर निकल आया।* षोडशी की सारी शिराएँ मीड़ खिची हुई वीणा की भाँति, चरम-व्याकुलता से बज उठी। वह दौडी हुई बुआ के पास जाकर बोली—'बुआ, इन संन्यासी महाराज के भोग की तैयारी करो।'

यही सब शुरू हो गया। सन्यासियों की सेवा षोडशी के जीवन का लक्ष्य बन गयी। इतने दिनो के बाद श्वसुर को बहू पर अहसान करने का मार्ग मिला। माखन ने उत्साह दिखाते हुए कहा—मकान मे एक अच्छी-सी अतिथि-शाला खोलनी चाहिए। माखनबाबू की आमदनी कुछ समय से कम हो रही थी, परन्तु वे बारह रुपये सैकड़े के ब्याज पर उधार रुपये लेकर इस सत्कर्म मे लगाने लगे।

संन्यासी भी ढेरों जुटने लगे। उनमें अधिकांश सच्चे नही है, इस विषय में माखन को कोई सन्देह नही था, परन्तु बहूरानी के सामने उसका आभास देने की *सामर्थ्य कहाँ थी ! विशेषकर वे जटाधारी जिस समय भोजन-विश्राम और सुविधाओं की छोटी-मोटी त्रुटियों को लेकर गाली देते, अभिशाप दे उठते, उस समय किसी-किसी दिन इच्छा होती कि उन्हे गर्दनिया देकर विदा कर दिया जाए।* परन्तु षोडशी का मुँह देखकर, उनके पाँव भी पकड़ने पडते। यही था उनका कठोर प्रायश्चित।

संन्यासी के आते ही, पहले अन्त.पुर में एक बार उसकी पुकार होती। बुआ उसे ले बैठती, षोडशी दरवाजे की ओट मे खड़ी होकर देखती। इस साव-

धानी का कारण यही था कि कहीं संन्यासी उसे पहले से ही 'माँ' न कह बैठे। क्यों, क्या पता!—वरदा के जो फोटोग्राफ षोडशी के पास थे, वे उसकी बाल्यावस्था के थे। उसे बालक-मुख के ऊपर दाढ़ी-मूँछ, जटा-जूट, छाई-भस्म लगा देने से वह किस तरह की सूरत बन सकती थी, कहना कठिन था। कितनी ही बार, कितने ही मुख देखकर लगता, शायद कुछ-कुछ उनके जैसा ही है, हृदय के भीतर रक्त तेजी से बहने लगता, उसके बाद देखा जाता—कण्ठस्वर ठीक से नहीं मिलता, नाक की नोंक कुछ और ही उठी है।

इस तरह से घर के कोने मे बैठी रहकर भी, नित्य नये-नये सन्यासियों का सत्सग पाकर, षोडशी जैसे सम्पूर्ण ससार मे अपने पुरुष की खोज करने के लिए निकल पड़ी थी। इस खोज मे ही उसका सुख था। इस खोज मे ही उसके पति, उसके जीवन और यौवन की परिपूर्णता थी। इस खोज को घेर कर ही उसके संसार के सभी आयोजन थे। सुबह उठकर इसी के लिए उसका सेवा-कार्य आरम्भ होता—इसके पहले रसोईघर का काम वह कभी नहीं करती थी, इस समय इसी काम में उसका विशेष लगाव था। प्रत्येक क्षण उसके मन के भीतर आशा का प्रदीप प्रज्वलित रहता। रात में सोने के लिए जाने से पहले—'कल शायद मेरा वह अतिथि आ पहुँचेगा'—यह चिन्ता ही उसके सारे दिन की अंतिम चिन्ता होती। जिस तरह की यह खोज चल रही थी, उसके साथ ही जिस तरह से विधाता ने तिलोत्तमा को गढ़ा था, उसी तरह से षोडशी अनेक सन्यासियों के श्रेष्ठ गुणो को मिलाकर, वरदा की मूर्ति अपने मन में बड़ी खूबसूरती से गढ रही थी। पवित्र उसकी सत्ता, तेजपुंज उसकी देह, गम्भीर उसका ज्ञान, अति कठोर उसका व्रत! इस सन्यासी की अवज्ञा कर सके, ऐसी हिम्मत किस मे थी! सब सन्यासियों मे इस अद्वितीय सन्यासी की ही तो पूजा चल रही है। स्वयं उसके श्वसुर भी इसी पूजा के प्रधान पुजारी है, षोडशी के लिए इससे अधिक गौरव की बात और कुछ नहीं थी!

परन्तु, सन्यासी प्रतिदिन ही तो आते नहीं। यह अन्तर उसके लिए बड़ा असह्य होता। और फिर धीरे-धीरे वह अन्तर भी भर गया। षोडशी घर मे रह कर स्वय संन्यास की साधना में लग गयी वह फर्श पर कम्बल बिछाकर सोती, एक समय जो कुछ खाती, उसमें फल-मूल ही अधिक होते। शरीर पर उसके गेरुआ वस्त्र की साड़ी रहती, परन्तु सधवा के लक्षण प्रदर्शित करने को, उसकी चौड़ी

लाल किनारी होती, एवं सुहागिनो की माँग मे आधी दूर तक रहनेवाली एक मोटी सिंदूर की रेखा होती। इससे भी आगे, श्वसुर से कहकर संस्कृत पढना आरम्भ कर दिया। मुग्धबोध कण्ठस्थ करने मे अधिक दिन नही लगे। श्वसुर जी ने कहा—इसी को कहते है पूर्वजन्म की कमायी हुई विद्या!

पवित्रता मे वह जितनी ही आगे बढ़ेगी, सन्यासी के साथ उसका आन्तरिक मिलन उतना ही पूर्ण हो सकेगा—यह उसने मन-ही-मन निश्चित कर रखा था। बाहर के सभी लोग धन्य-धन्य करने लगे; इस सन्यासी साधु की साध्वी स्त्री के पाँवों की धूलि और आशीर्वाद लेने के लिए, लोगों की भीड़ घर मे लगी रहती—इतना ही क्यों, स्वय बुआ भी उसके समीप भय और लिहाज से चुप ही बनी रहती।

परन्तु, पोडशी अपने मन को जानती थी। उसके मन का रग तो उसके शरीर की साड़ी के रग की भाँति सम्पूर्ण गेरुआ नही हो पा रहा था! आज सुबह से ही यह जो झिर-झिर करके ठण्डी हवा बह रही थी, वह जैसे उसके सम्पूर्ण देह-मन के ऊपर किसी एक व्यक्ति की फुसफुसाहट की तरह आ रही थी। उठने की जरा भी इच्छा नहीं हो रही थी। जोर लगाकर वह उठी, जोर लगाकर ही काम भी करने लगी। इच्छा हो रही थी, खिडकी के पास बैठकर, उसके मन के किसी सुदूर कोने से भी जो बाँसुरी का स्वर आ रहा है, उसे चुपचाप सुने। किसी-किसी दिन उसका सम्पूर्ण मन जैसे अचेतन हो उठता था, धूप मे नारियल के पत्ते झिलमिला उठते थे, वे जैसे उसके हृदय के भीतर कोई प्रेम-कथा कहते रहते थे। पण्डित जी गीता पढकर जो व्याख्या करते थे, वह सब व्यर्थ हो जाती थी। लेकिन यदि उसी समयउसकी खिड़की के बाहरवाले बगीचे मे, सूखे पत्तों पर चंचल गिलहरी खसखस करती हुई दौड़ती, बहुत दूर आकाश के हृदय को भेद-कर चील की तीखी सीटी जैसी आवाज सुनाई देती, क्षण-क्षण पर पोखर के किनारे वाली सड़क पर होकर बैलगाडी चलने की एक थकी-हारी ध्वनि वायु को कम्पित कर देती, तो ये सभी उसके मन को स्पर्श करके उसे अकारण ही व्याकुल कर देते। इन्हे तो किसी प्रकार भी वैराग्य का लक्षण नहीं कहा जा सकता। जो विस्तीर्ण ससार दुखी प्राणो का संसार था—पितामह ब्रह्मा के रक्त के उत्ताप से जिसकी आदिम वाष्प ने आकाश को छा दिया था; जो उनके चतु-र्मुख के वेद-वेदान्त उच्चारण के बहुत पहले की सृष्टि थी; जिसके रंग के साथ,

ध्वनि के साथ, सारी सुगन्धों के साथ, जीवों की नस-नस में समझदारी आ गयी थी, उसी के छोटे-बड़े हजार-हजार दूत, मानव-हृदय के खास-महल में आवागमन के गुप्त मार्ग को जानते थे—षोडशी तो तप-साधन के कांटे बिछाकर आज तक उस मार्ग को बन्द नहीं कर पायी है।

उपयोगिता के लिहाज से गेरुआ रंग को और भी महत्वपूर्ण मानना होगा। षोडशी पण्डितजी के पीछे पड़ गयी—मुझे योगासन की प्रणाली बता दीजिए।

पंडित बोले—'माँ, तुम्हें तो इन सब पंथों की आवश्यकता नहीं है। सिद्धि तो पके हुए आँवले की भाँति स्वयं ही तुम्हारे हाथ में आ पहुँची है।'

उसके पुण्य-प्रभाव को लेकर चारों ओर के लोग अचरज प्रकट करते रहते थे, इससे षोडशी के मन में एक अहंकार का नशा जम गया था। ऐसा ही एक दिन था, जब घर की नौकरानी-नौकर तक उसे कृपापात्री समझा करते थे। वही आज जब पुण्यवती कहकर सब लोग धन्य-धन्य करने लगे, तो उसे अपनी बहुत दिनों की गौरव की तृष्णा मिटाने का सुयोग प्राप्त हुआ। सिद्धि को उसने पा लिया है, इस बात को अस्वीकार करने में उसका मुँह बन्द हो जाता था—इसीलिए पंडितजी के सामने वह चुप रह गयी।

माखन के पास आकर षोडशी ने कहा—'पिताजी, मैं किसके पास प्राणायाम का अभ्यास करना सीखूँ, बताइए तो?'

माखन बोले—'उसे सीखे बिना भी तो कोई खास परेशानी दिखाई नहीं देती। तुम जितनी दूर जा पहुँची हो, वही कितने लोगों के भाग्य में है!'

जो भी हो, प्राणायाम का अभ्यास करना ही होगा! ऐसा दुर्भाग्य था कि सिखाने वाला भी मिल गया। माखन का विश्वास था कि आधुनिक काल के अधिकांश बंगाली, मोटे तौर पर उन्हीं जैसे है—अर्थात् खाते हैं, पहनते हैं, घूमते हैं एवं दूसरों की बदमाशियों को छोड़कर संसार में और किसी असम्भव पर विश्वास नहीं करते। परन्तु, आवश्यकता पड़ने पर खोज करने जाने पर देखा, बंगाल में ऐसे मनुष्य भी हैं, जिन्होंने खुलना जिले के भैरव-नद के तट पर, विशुद्ध नैमिषारण्य का आविष्कार किया है। यह आविष्कार सत्य है, इसका प्रधान प्रमाण इन्होंने कृष्ण-प्रतिपदा के सुबह ही, स्वप्न में, स्पष्ट रूप से पा लिया। स्वयं सरस्वती ने भण्डाफोड़ कर दिया था। यदि वे अपने ही वेश में आकर प्रकट होतीं, तब तो शायद सन्देह का कारण भी रहता—परन्तु उन्होंने अपनी आश्चर्यजनक

लाल किनारी होती, एवं सुहागिनों की माँग में आधी दूर तक रहनेवाली एक मोटी सिंदूर की रेखा होती। इससे भी आगे, श्वसुर से कहकर संस्कृत पढ़ना आरम्भ कर दिया। मुग्धबोध कण्ठस्थ करने में अधिक दिन नहीं लगे। श्वसुर जी ने कहा—इसी को कहते हैं पूर्वजन्म की कमायी हुई विद्या!

पवित्रता में वह जितनी ही आगे बढ़ेगी, सन्यासी के साथ उसका आन्तरिक मिलन उतना ही पूर्ण हो सकेगा—यह उसने मन-ही-मन निश्चित कर रखा था। बाहर के सभी लोग धन्य-धन्य करने लगे, इस संन्यासी साधु की साध्वी स्त्री के पाँवों की धूलि और आशीर्वाद लेने के लिए, लोगों की भीड़ घर में लगी रहती—इतना ही क्यों, स्वयं बुआ भी उसके समीप भय और लिहाज से चुप ही बनी रहती।

परन्तु, पोडशी अपने मन को जानती थी। उसके मन का रंग तो उसके शरीर की साड़ी के रंग की भाँति सम्पूर्ण गेरुआ नहीं हो पा रहा था! आज सुबह से ही यह जो झिर-झिर करके ठण्डी हवा बह रही थी, वह जैसे उसके सम्पूर्ण देह-मन के ऊपर किसी एक व्यक्ति की फुसफुसाहट की तरह आ रही थी। उठने की जरा भी इच्छा नहीं हो रही थी। जोर लगाकर वह उठी, जोर लगाकर ही काम भी करने लगी। इच्छा हो रही थी, खिड़की के पास बैठकर, उसके मन के किसी सुदूर कोने से भी जो बाँसुरी का स्वर आ रहा है, उसे चुपचाप सुने। किसी-किसी दिन उसका सम्पूर्ण मन जैसे अचेतन हो उठता था, धूप में नारियल के पत्ते झिलमिला उठते थे, वे जैसे उसके हृदय के भीतर कोई प्रेम-कथा कहते रहते थे। पण्डित जी गीता पढ़कर जो व्याख्या करते थे, वह सब व्यर्थ हो जाती थी। लेकिन यदि उसी समय उसकी खिड़की के बाहरवाले बगीचे में, सूखे पत्तों पर चंचल गिलहरी खसखस करती हुई दौड़ती, बहुत दूर आकाश के हृदय को भेद-कर चील की तीखी सीटी जैसी आवाज सुनाई देती, क्षण-क्षण पर पोखर के किनारे वाली सड़क पर होकर बैलगाड़ी चलने की एक थकी-हारी ध्वनि वायु को कम्पित कर देती, तो ये सभी उसके मन को स्पर्श करके उसे अकारण ही व्याकुल कर देते। इन्हें तो किसी प्रकार भी वैराग्य का लक्षण नहीं कहा जा सकता। जो विस्तीर्ण संसार दुखी प्राणों का संसार था—पितामह ब्रह्मा के रक्त के उत्ताप से जिसकी आदिम वाष्प ने आकाश को छा दिया था; जो उनके चतु-र्मुख के वेद-वेदान्त उच्चारण के बहुत पहले की सृष्टि थी; जिसके रंग के साथ,

३

वरदा के चले जाने के बाद से बारह वर्ष बीत गये, अब षोडशी की अवस्था पच्चीस वर्ष है। एक दिन षोडशी ने अपने योगी-शिक्षक से जिज्ञासा की—'बाबा, मेरे पति जीवित हैं या नहीं, इसे मैं कैसे जानूं ?'

योगी प्रायः दस मिनट के लिए स्तब्ध होकर आँखें बन्द किये रहे, उसके बाद आँखें खोलकर बोले—'जीवित है।'

'किस तरह से जाना ?'

'उस बात को अभी तुम नहीं समझोगी। परन्तु यह निश्चित समझो, स्त्री होकर भी साधना के पथ पर तुम जो इतनी दूर अग्रसर हो गयी हो, वह केवल तुम्हारे पति के असामान्य तपोबल से ही है। उन्होंने दूर रहकर भी तुम्हें सहधर्मिणी बना लिया है।'

षोडशी का शरीर-मन पुलकित हो उठा। अपने सम्बन्ध मे उसे लगा, ठीक जैसे शिव तपस्या कर रहे हैं और पार्वती पद्म-बीजो की माला जपते-जपते, उनके लिए प्रतीक्षा कर रही हैं।

षोडशी ने फिर जिज्ञासा की, 'वे कहाँ है, क्या यह जान सकती हूँ ?'

योगी कुछ हँस दिये, उसके बाद बोले—'एक दर्पण ले आओ।'

षोडशी दर्पण लाकर, योगी के निर्देश के अनुसार उसकी ओर देखने लगी।

आधा घन्टा बीत जाने पर योगी ने जिज्ञासा की—'कुछ देख रही हो ?'

षोडशी ने द्विधा के स्वर मे कहा—'हाँ, जैसे कुछ दीख रहा है, परन्तु स्पष्ट नही समझ पा रही हूँ।'

'कुछ सफेद-सफेद दीख रहा है क्या ?'

'सफेद ही तो है !'

'जैसे पहाड़ के ऊपर बर्फ हो ?'

'अवश्य बरफ ही है ! मैंने आज तक कभी पहाड नही देखा, इसीलिए अब तक धुंधला लग रहा था।'

इसी तरह के आश्चर्यमय उपायों से धीरे-धीरे देखा गया कि वरदा हिमालय के अति दुर्गम स्थान पर, लंचू पहाड की बरफ के ऊपर अनावृत्त-शरीर मे बैठा है। वहाँ से तपस्या का तेज आकर षोडशी को स्पर्श कर रहा है, यही एक आश्चर्यजनक बात थी।

उस दिन घर मे अकेली बैठी हुई षोडशी का समस्त शरीर रह-रहकर काँप-काँप उठा। उसके पति की तपस्या उसे दिन-रात घेरे हुए है, पति के समीप रहने पर भी बीच-बीच मे जो विच्छेद हो सकता था, वह विच्छेद भी उसे नहीं है, इस आनन्द से उसका मन भर उठा। उसे लगा, साधना और भी अधिक कठोर होनी चाहिए। इतने दिनों तक पौष मास मे जिस कम्बल को वह शरीर पर ओढ़े रहती थी, उसे फेंकते ही ठण्ड से उसके शरीर मे रोमाच हो उठा। षोडशी को लगा, उस लघु पहाड की हवा उसके शरीर को आकर सिहरा रही है। हाथ जोड़कर, आँखें बन्द करके वह बैठी रही, आँखों के कोने से लगातार जल गिरने लगा।

उसी दिन मध्याह्न मे, आहार के बाद माखन षोडशी को अपने कमरे मे बुलाकर बड़े सकोच के साथ बोले—'बेटी, इतने दिनों तक तुमसे नही कहा, सोचा था आवश्यकता नहीं पड़ेगी, परन्तु अब नही चल रहा है। मेरी सम्पत्ति की अपेक्षा मेरा कर्ज बहुत बढ गया है, किस दिन मेरी सम्पत्ति कुर्क हो जाएगी, नही कहा जा सकता।'

षोडशी का मुख आनन्द से दीप्त हो उठा। उसके मन में सन्देह नहीं रहा कि यह सब उसके पति का ही काम है। उसके पति उसे पूर्ण भाव से अपनी सहधर्मिणी बना रहे हैं—सम्पत्ति का जो कुछ व्यवधान बीच मे था, वह भी शायद इस बार मिटा दिया है। केवल उत्तरी हवा ही नहीं, यह जो कर्ज हो गया है, वह भी उसी लघु पहाड़ से ही आ रहा है, यह उसके पति के ही दायें हाथ का स्पर्श है।

उसने मुस्कराते हुए कहा—'भय क्या है, पिताजी ?'

माखन बोले—'हम लोग खड़े कहाँ होगे ?'

षोडशी बोली—'नैमिषारण्य मे कुटिया बनाकर रहेगे !'

माखन समझ गये, इसके साथ सम्पत्ति-विषयक चर्चा करना व्यर्थ है। वे बाहर के कमरे मे बैठकर चुपचाप तम्बाकू पीने लगे।

इसी समय एक मोटर गाड़ी दरवाजे के पास आकर रुकी। साहबी कपडे पहने हुए एक युवक कूदते हुए उतरकर, माखन के कमरे मे आकर, अधूरे ढंग से नमस्कार की चेष्टा करता हुआ बोला—'पहचान नही पा रहे है ?'

'यह कौन, वरदा है क्या ?'

वरदा जहाज का खलासी बनकर अमेरिका चला गया था। बारह वर्ष के बाद, वह आज किसी एक कपड़ा-सूत आदि बनाने की मशीनों की कम्पनी का भ्रमणकारी एजेन्ट होकर लौटा था। पिता से बोला—'आपको यदि कपड़ा-सूत बनाने की मशीन की आवश्यकता हो, तो खूब सस्ती कीमत से दे सकता हू।'

कहकर उसने चित्रमय-कैटलॉग जेब से निकाला।

मुद्रक : शुक्ला आर्ट प्रिंटर्स, मौजपुर, दिल्ली-110053